वैश्वीकरण–वैश्विक–धर्म एवं विश्वशान्ति

आचार्य कनकनन्दी से प्रशिक्षण प्राप्त करके द्वितीय बार विदेशों में धर्म प्रचार के अनन्तर आचार्य कनकनन्दी के ग्रन्थ विमोचन में दीप प्रज्ज्वलित करते हुए डॉ. कच्छारा एवं डॉ. अग्रवाल (भूतपूर्व वैज्ञानिक, अमेरिका) आदि।

लेखक :-
वैज्ञानिक धर्माचार्य श्री कनकनंदी जी गुरुदेव

डलास कन्वेंशन (अमेरिका) में जैन धर्म के वैज्ञानिक पक्ष को प्रस्तुत करते हुए डॉ० एन. एल. कच्छारा

वैश्वीकरण–वैश्विक–धर्म एवं विश्वशान्ति

नये सदस्य/द्रव्यदाता

(1)आनन्दी जैन W/O स्व. श्री राजमल जी–
दोसी, दिपेन्द्र जैन (आजीवन सदस्य)
(2)सुमति विलास जी जैन (3)चेतन लाल जैन
(4)राजेन्द्र जैन(वार्षिक सदस्य)
ग. पु. कॉलोनी सागवाडा, जि. डूँगरपुर (राज.)

प्रकाशक

1.धर्म दर्शन विज्ञान शोध संस्थान, बडौत

2.धर्म दर्शन सेवा संस्थान (उदयपुर)

लेखकः– वैज्ञानिक धर्माचार्य श्री कनकनंदी जी गुरुदेव

वैश्वीकरण–वैश्विक–धर्म एवं विश्वशान्ति

लेखकः– वैज्ञानिक धर्माचार्य श्री कनकनंदी जी गुरुदेव
ग्रंथांक–169
प्रथम संस्करण–2007
प्रतियाँ–1000
मूल्य–21 रुपये (पुनः प्रकाशनार्थ)
मुद्रांकन :– *मुनि तीर्थ नन्दी*
मुद्रक शोधन एवं लेखन सहायकः–
मुनि आध्यात्म नन्दी जी आ. ऋद्धि श्री,
मुद्रक : सीमा प्रिन्टर्स, उदयपुर फोन : 0294–3295406
प्राप्ति स्थान
धर्म दर्शन सेवा संस्थान,
द्वारा– छोटू लाल चितौडा,
चंद्र प्रभ दि. जैन मंदिर आयड,
आयड बस–स्टॉप के पास
उदयपुर– 313001(राज.)
फोन नं.–(0294)2413565.5961114,
Mo.–9887370057

मानवीय एकता के भगीरथ– आचार्य श्री कनकनन्दी जी गुरुदेव

साध्वी ऋद्धि श्री (संघस्थ–वैज्ञानिक धर्माचार्य श्री कनक नन्दी जी गुरुदेव)

असाधारण एवं अलौकिक व्यक्तित्व के धनी, ऋतम्भरा प्रज्ञा, प्रबलपुरुषार्थ, कुशल नेतृत्व तथा जीवन की जटिल–युगीन समस्याओं का समुचित समाधान करने वाले, दिव्य महापुरुष वैज्ञानिक धर्माचार्य श्री कनकनन्दी गुरुदेव वर्तमान युग में जिनशासन, जिनश्रुत की प्रभावना व प्रचार–प्रसार व्यापक पैमाने पर कर रहे हैं।

संसार का हर प्राणी जीवन जीता है परन्तु जीने, जीने में बहुत अन्तर होता है। कहा गया है कि हिमालय पर्वत से नीचे की ओर लुढकने वाले पत्थरों में से कुछ पत्थर पूर्व की ओर चले जाते हैं और कुछ पश्चिम की ओर। पूर्व दिशा की ओर गिरने वाले पत्थर गंगा आदि नदियों में जा गिरते हैं और वे इतना सुन्दर, सौम्य रूप प्राप्त कर लेते हैं कि शालिग्राम की तरह प्रतिष्ठित हो जाते हैं। जो पत्थर पश्चिम की तरफ गिरते हैं वे चूर–चूर होकर रेत बन जाते हैं, इसी प्रकार कुछ मनुष्य रेत बनने वाले पत्थरों की तरह अपने जीवन को निरर्थक कर देते हैं तथा कुछ मनुष्य अपने गरिमामयी व्यक्तित्व के द्वारा अनेक प्राणियों को आदर्श बोधपाठ देकर स्व–पर का जीवन समुज्ज्वल बनाते हैं। पूज्य आ. श्री कनकनन्दी जी गुरुदेव का दिव्य–भव्य व्यक्तित्व अनेक प्राणियों को आर्दश बोधपाठ देता है। आप आत्मदृष्टा, युगदृष्टा, भविष्यदृष्टा की अलौकिक क्षमताओं से समाहित हैं। ऐसे व्यक्ति विरले ही होते हैं

जिनमें युगपत् तीनों दृष्टियाँ समाहित होती हैं। पूज्य गुरुदेव कभी कुशल आध्यात्म की भूमिका का निर्वाह करते हैं तो कभी आगम संपादन व साहित्य लेखन की गहराइयों में डूबते नजर आते हैं। कभी युगीन समस्याओं का समाधान प्रस्तुत करते हैं तो कभी जीवन जीने की कला का बोधपाठ देते हैं। कभी उच्चकोटि के शीर्षस्थ वैज्ञानिक, प्रोफेसर, जज–वकीलों के साथ गहन, व्यापक सिद्धान्तों की चर्चा करते हैं तो कभी आम आदमियों के दुःख–दर्दों का निवारण करते हुए नजर आते हैं। कभी उच्च शिक्षाविदों से मंत्रणा करते हैं तो कभी विद्यार्थियों को प्रतिभावान् बनने का बोधपाठ पढाते हैं। आप अपने अनेकानेक रूपों से इस संसार के अनेक पहलुओं को विहंगम दृष्टि, उदार–उदात्त भावना, परिष्कृत आचरण के बल पर देखते–परखते व अनुभव करते हुए पूरे ब्रह्माण्ड को सुखी, समृद्ध, समुन्नत, विकासशील बनाने के लिए पूरे तन–मन श्रम–शक्ति से जुडे हुए हैं। भगवान् महावीर के निर्वाण गमन के बाद अब तक हजारों वर्षों की उस लम्बी परंपरा में आप ऐसे दैदीप्यमान नक्षत्र हुए हैं कि आपने अपने विशिष्ट अवदानों से युग को उपकृत किया है तथा जिनशासन की महती प्रभावना करके अपनी संयमसाधना, ज्ञानाराधना एवं अन्यान्य अनेक विशेषताओं से एक विशिष्ट इतिहास रचा है, जिसे पढने वाले चमत्कृत हुए बिना नहीं रह पाते हैं। गुरुदेव कहते हैं मैंने इतिहास पढने के लिए जन्म नहीं लिया है अपितु मुझे नया इतिहास स्वयं बनाना है। मैं स्वयं को इतना आदर्श बनाऊँगा कि मेरे आदर्शों पर सभी चलें। आपने अपने व्यक्तित्व को

इस प्रकार तराशा है कि उसका हर पहलू प्रेरणास्रोत है। गुरुदेव के स्वाभिमानी व्यक्तित्व का प्रत्यक्ष दर्शन हमें तब होता है जब उनके पास देश–विदेश के नामख्यात–शीर्षस्थ वैज्ञानिक, प्रोफेसर, जज, वकील, शिक्षाविद्, राजनीतिज्ञ गहन, सूक्ष्म विषयों का अध्ययन करने व अपनी समस्याओं का समाधान प्राप्त करने आते हैं। गुरुदेव उन ख्यातनाम, वरिष्ठ वैज्ञानिकों, प्रोफेसरों, शिक्षाविदों, जज–वकीलों, मनोवैज्ञानिक आदि को बडे–बडे वैज्ञानिक, गणितिय, दार्शनिक, आध्यात्मिक सिद्धान्तों का विश्लेषण तार्किक, गणितीय, वैज्ञानिक, दार्शनिक, आधुनिक शैली में करके उन सभी को बहुमूल्य सिद्धान्त–सूत्र बताकर उनकी गलत अवधारणाओं का खण्डन भी करते हैं। वास्तव में गुरुदेव की उच्च कोटि की मनीषा, चिंतन–मनन की व्यापकता, सशक्त लेखनशैली, उदार–परिष्कृत भावना, कठोर श्रमशीलता, समयानुबद्धता, निष्पक्षता, निर्लोभता इत्यादि सद्गुण आदर्शमयी जीवनशैली के ऐसे नुस्खे हैं जिनको देखकर हर कोई उनके व्यक्तित्व से आदर्श बोधपाठ की शिक्षा लेता है। गुरुदेव ने अपनी अन्तः प्रज्ञा से बौद्धिक जगत् को उपकृत तो किया ही है साथ–साथ अपनी परिष्कृत वैचारिक शैली से आध्यात्म तथा वैज्ञानिक जगत् में नये–नये आयाम भी उद्घाटित किये हैं। जाति, साम्प्रदाय, रंग, वर्ण, धर्म, पंथ, मत, मतान्तर आदि के भेद–भावों से सर्वथा निर्लिप्त गुरुदेव का विचार–व्यवहार, साहित्य सदियों तक दुनिया का मार्गदर्शन करता रहेगा। एक ध्यानयोगी विचारक–साधक जब

सम्पूर्ण विश्व की हित चिंता के लिए साधना की अतल गहराईयों में गोता लगाकर जीवन के अमूल्य अनमोल मोती प्रस्तुत करता है तो उससे सम्पूर्ण मानवता लाभान्वित होती है।

आचार्य श्री ने एक लम्बी साहित्यिक यात्रा तय की है। उनके साहित्य में विज्ञान, दर्शन, तर्क, न्याय, गणित, शिक्षा, राजनीति, समाजनीति, नैतिकनीति, खगोल, भूगोल, इतिहास, आयुर्वेद, ज्योतिष, शकुन, स्वप्न, अंग विज्ञान, मनोविज्ञान इत्यादि विषयों का अटूट खजाना समाहित है। जो आपके तलस्पर्शी, गहन, व्यापक, अध्ययन व चिंतन–मनन की प्रकृष्टता को पुष्ट करता है। चिंतन–मनन–साधना–अनुभव के दरवाजे पर जहाँ कोई नहीं पहुँचता वहाँ गुरुदेव नजर आते हैं। उनकी बौद्धिक तेजस्विता की अविरल रसधारा ने मानव जीवन के मरुस्थल को आप्लावित किया है।

गुरुदेव की जीवन शैली में अथकश्रम, गहनसाधना, स्वस्थ चिंतन, दृष्ठनिष्ठा, प्रदीप्त पौरुष कूट–कूट कर समाया हुआ है। आप सामाजिक, राष्ट्रीय, वैश्विक समस्याओं पर गहन चिंतन–मनन करते हैं तथा उन समस्याओं के मूल कारण को पकडने का व उसके निराकरण का सदैव प्रयास करते हैं। निष्पक्ष एवं निर्भीक समाधान की प्रस्तुति आपका स्वाभाविक एवं जन्मजात गुण है क्योंकि आपकी सोच सदैव सकारात्मक होती है। आपकी विहंगम दूरदृष्टि, गहरी सूझ–बूझ समय को पार देखने की दृष्टि देती है।

आने वाले समय में युग की क्या माँग होगी और उसकी उपयोगिता क्या होगी यह सब आपकी दृष्टि में पहले से अंकित हो जाता है। श्रेष्ठतम आदर्शों को कर्म के रूप में व्यवहृत करना आपकी स्वाभाविक पसन्द है। वास्तव में गुरुदेव के उत्कृष्टतम अवदानों का आँकलन करना गागर में सागर भरने के समान है। पूज्य गुरुदेव के व्यक्तित्व–कृतित्व का गुणगान मेरी अल्प बुद्धि कभी नहीं कर सकती। मैं तो उनके श्री चरणों में अपना श्रद्धा–भक्ति से भावभरा वंदन ही समर्पित कर सकती हूँ।

गुरुदेव आपकी ज्ञानरश्मि को नमन्
गुरुदेव आपकी योगरश्मि को वंदन,
साहित्य जगत् को चमत्कृत करती रहे आपकी प्रज्ञा,
गुरुदेव आपकी साधना रश्मि को नमन्।

आचार्य श्री कनक नन्दी जी गुरुदेव संसघ के विशेष कार्यक्रम (2007)

1.w.w.w. jainkanaknandhi. org
2.E-mail-info@jainkanaknandhi. org.
3.राष्ट्रीय/अंतर्राष्ट्रीय वैज्ञानिक संगोष्ठियाँ-9
4. धर्म दर्शन विज्ञान प्रशिक्षण शिविरों का आयोजन-29
5. धार्मिक प्रशिक्षण कक्षाएँ-सैकडों

6. स्वसंघ-परसंघ के साधुओं के अध्ययन-अध्यापन के कार्यक्रम-सैकडों

7. प्रश्नमंच एवं सांस्कृतिक कार्यक्रम, भजन, भाषण, सेवा-सैकडों

8. बच्चों, युवक-युवतियों को संस्कारवान् बनाना एवं उनसे आहार लेना-हजारों

9. हर क्षेत्र में अच्छे व्यक्तियों को एवं संस्थाओं को पुरस्कृत करना-हजारों

10. हर विधा के वैज्ञानिक शोधपूर्ण साहित्यों का सृजन एवं प्रकाशन 170ग्रंथ (छह

भाषाओं में अनेक संस्करण) 11). कम्प्यूटराइज्ड प्रतियोगिता-11

12. अनेक विश्व विद्यालय में **"आ. कनकनन्दी साहित्य कक्ष"** की स्थापना।

13 गरीब, असहाय, रोगी, विपन्न मनुष्य एवं पशु-पक्षियों की सेवा-सहायता करना।

14 व्यक्ति से लेकर राष्ट्र एवं विश्व में समता-सुख-शान्ति-मित्रता, संगठन आदि की स्थापना के लिए प्रयास

15) धर्म दर्शन विज्ञान शोध संस्थान (बडौत, मुफ्फरनगर, कोटा, उदयपुर, सलूम्बर, प्रतापगढ, मुंबई, अमेरिका, सागवाडा) 16) धर्म दर्शन सेवा संस्थान (उदयपुर, अमेरीका) 17) जैन, हिन्दू , मुसलमान शोध छात्रों द्वारा आ. कनक नन्दी साहित्यों के ऊपर शोध (PH.D) कार्य ।**18)** अमेरिका, इंगलेण्ड, आष्ट्रेलिया आदि देश–विदेश में स्व–वैज्ञानिक शिष्यों द्वारा धर्म प्रभावना।

संस्थान की नियमावली

1 विवक्षित पुस्तक के प्रकाशक, द्रव्यदाता को उसे किताब की दशामांश प्रतियाँ दी जायेगी।

2 ग्रंथ प्रकाशक (द्रव्यदाता) ग्रंथमाला का आजीवन सदस्य रहेगा तथा ग्रंथमाला से

प्रकाशित पुस्तक की एक-एक प्रति निःशुल्क दी जायेगी।

3 साधु साध्वी, विशिष्ट विद्वत्जन और विशिष्ट धर्मायतनों को पुस्तकें निःशुल्क दी जायेगी।

4 संस्थान से संबंधित कार्यकर्ताओं को प्रकाशित पुस्तकों की एक-एक प्रति निः शुल्क

दी जायेगी। 5 संस्थान की वार्षिक सदस्यता 501 रु. एवं आजीवन सदस्यता 7001 रु. है।

स्वसंघ के आदर्शों के द्वारा जैन धर्म का प्रचार–प्रसार विश्व स्तर परसंभव

(आचार्य कनकनंदी जी गुरुदेव के संघ की नियमाबली)

(1)संघ में चातुर्मास, केशलोंच, (दीक्षा जयन्ति, आचार्यपद जयन्ति, जन्मजयन्ति आदि नहीं मनेगी) की आमन्त्रण पत्रिका नहीं छपेगी। वैसे गुरुदेव इन पत्रिकाओं को पहले से ही छपवाने के पक्ष में नहीं थे अगर श्रावक अपनी स्वेच्छा व भक्ति से चातुर्मास की पत्रिका छपवाते भी हैं तो गुरुदेव संघस्थ उनको नहीं भेजेंगे, श्रावक ही भेजेंगे। इसलिए सूचना हेतु सामान्य व कम मात्र में ही श्रावक पत्रिका छपाये। संगोष्ठी, शिविर, दीक्षामहोत्सव आदि विशेष कार्यक्रम की पत्रिका के लिए उपर्युक्त प्रावधान नहीं है।

(2)प्रवचन–विधान / पंचकल्याण / मठ–मन्दिर–मूतिनिर्माण / वेदी प्रतिष्ठा / शिविर / संगोष्ठी / साहित्यप्रकाशन / देश–विदेश में धर्म प्रचार कार्य / विश्वविद्यालयों में शोधकार्य / विश्वविद्यालयों में आचार्य कनकनन्दी साहित्यकक्ष की स्थापना इत्यादि कार्य पहले से ही स्वेच्छा, सहजता–सरलता से होते थे तथा आगे भी होंगे।

(3) जिससे श्रावक पर विशेष आर्थिक बोझ पडता हो ऐसे कार्य स्वयं श्रावक अपनी शक्ति–भक्ति–स्वेच्छा से करते हैं तो स्वयं करें संघ ऐसे कार्यों को करने हेतु दबाब नहीं डालेगा।

(4) आचार्य भगवन् की अनुमति के बिना संघ के कोई भी सदस्य

(साधु / साध्वी, ब्रह्मचारी–ब्रह्मचारिणी–श्रावक) किसी भी प्रकार की वस्तु श्रावक से नहीं माँगेंगे एवं न आदेश देंगे।

(5) किसी भी प्रकार की बोली हेतु संघ दबाव नहीं डालेगा।

(6) संस्था के विभिन्न वैज्ञानिक उपकरण आवश्यकता के बिना संघ में नहीं संस्था में ही रहेंगे।

(7) संकीर्ण पंथवादी, अर्थलोलुपी, अयोग्य, अनुशासनविहीन, अविनयी, गृहस्थ, विद्वान्, पंडित, ब्रह्मचारी, ब्रह्मचारिणी, साध्वी, साधु (स्व या पररांघ) के लिए भी संघ में अनुमति नहीं है। उपर्युक्त गुणों से युक्त व्यक्ति से लेकर साधुओं को संघ में स्वीकार्य करने का कार्य आचार्य गुरुदेव के निर्णय पर ही होगा।

(8) संघ में संकीर्ण मतवादी, पंथवादी, परम्परावादी, संतवाद, ग्रन्थवाद, जातिवाद, राष्ट्रवाद से परे उदार सहिष्णु, सनम्रसत्यग्राही, अनेकान्तमय वैज्ञानिक पद्धति से स्व पर–विश्वकल्याणकारी विचार–व्यवहार–कथन लेखन–अनुसंधान–प्रचार–प्रसार को ही महत्व दिया जा रहा है, आगे भी दिया जायेगा।

(9) जिस द्रव्य, क्षेत्र, काल, भाव, परिस्थिति, समाज में उपर्युक्त उद्देश्य एवं कार्य सम्पन्न होंगे ऐसे क्षेत्रादि विशेषतः योग्य ग्रामादि, शहरादि में ही संघ का विहार निवास, चातुर्मास अधिक से अधिक होगा।

(10)संघ के सभी सदस्य स्वावलम्बी बनेंगे यानि अपना कार्य स्वयं करेंगे तथा स्वानुशासी यानि संघ के नियम–कानून–अनुशासन का

पालन करेंगे एवं प्रत्येक कर्त्तव्य समय पर करेंगे।

(11) स्वास्थ्य की विशेष समस्या के कारण अपवाद से जो उपचार के रूप में पंखादि, औषधि आदि का प्रयोग होता है उस समस्या का समाधान होने के बाद उसका प्रयोग नहीं करना।

(12) संघस्थ सभी सदस्य परस्पर में वात्सल्य, सेवा, सहयोग, स्थितिकरण, उपगूहन से युक्त होंगे।

मेरा चार–आयाम सिद्धान्त

भगवान् है मेरा परम–सत्य स्वरूप
सिद्धान्त है स्याद्वाद–अनेकान्त रूप।
सतत साधना है मेरी स्वस्थ–समता
उपलब्धि हो मेरी परम–शान्ति रूपा।

वैज्ञानिक धर्माचार्य कनक नन्दी गुरुदेव

ग्लोबलाइजेशन (वसुधैव कुटुम्बकम्) की अवधारणा कल–आज और कल

द्वितीय विश्व युद्ध के बाद विश्व (पृथ्वी) में शान्ति एवं समृद्धि के लिए स्थापित "संयुक्त राष्ट्र संघ" तथा वैज्ञानिक विकास के कारण हुई यातायात व्यवस्था एवं संचार क्रान्ति(समाचार पत्र, रेडियो, टी.वी., फोन, वेबसाइट, ई.मेल आदि) के कारण पृथ्वी एक संयुक्त परिवार का स्वरूप धारण करती जा रही है। इसे और भी प्रायोगिक व्यापारिक रूप दे रहे हैं ग्लोबलाइजेशन, वैश्वीकरण, उदारीकरण, बाजार के खुलापन। वैज्ञानिक इकोसिस्टम, पारिस्थितिकी, पर्यावरण सुरक्षा के साथ–साथ आध्यात्म समता भाव, आध्यात्म एकात्मवाद, फ्रेण्डशिप डे, विश्व मैत्री–विश्व प्रेम, विश्व–शान्ति, विश्व–सुरक्षा, विश्व समृद्धि के भाव तथा कार्य ही यथार्थ से ग्लोबलाइजेशन है। इसके बिना केवल राजनैतिक, व्यापारिक आदि ग्लोबलाइजेशन अधिक उपकारी तथा दीर्घजीवी नहीं हो सकते हैं क्योंकि इस में क्षुद्र स्वार्थ, संकीर्णता, अनुदारता, वर्तमान–सर्वस्व आदि भाव रहने की संभावना होती है और रहती ही है।

(1) आध्यात्मिक वैश्वीकरण–आध्यात्मिक दृष्टि से प्रत्येक जीव "सव्वे सुद्धा हु सुद्ध णया" अर्थात् शुद्ध नय से प्रत्येक जीव शुद्ध होने से और शुद्ध अवस्था में सम्पूर्ण प्रत्येक जीव की शक्ति, सत्ता, अनुभूति आदि समान होने से वे समान हैं। अन्तः उनमें किसी

प्रकार ऊँच–नीचपना, स्वामी–सेवक भाव, मालिक–मजदूर सम्बन्ध, शोषक–शोषित, हिंसक–हिंस्य, श्रेष्ठ–कनिष्ठ, शिकार–शिकारी आदि भेद–भाव सर्वथा नहीं होता है।

अयं निजः परो वेत्ति भावना लघुचेतसाम्।
उदार पुरुशाणां तु वसुधैव स्व–कुटुम्बकम् ।।

क्षुद्र संकुचित भावना से युक्त व्यक्ति में अपना–पराया का निकृष्ट भेद–भाव रहता है परन्तु उदारमना संपूर्ण विश्व को अपना परिवार मानता है, जिससे विश्व के प्रत्येक जीव को अपने परिवार का सदस्य मानकर सबके साथ प्रेम, मैत्री, उदारता, समता का व्यवहार करता है। इसको ही विश्व बंधुत्व, सर्वात्मानुभूति कहते हैं। यह है धर्म का सार, अहिंसा का आधार विश्व–शांति का अमोघ उपाय। इसलिए एक जगह जैन आचार्य भी कहते हैं–

जीव जिणवर जे मुणहि जिणवर जीव मुणहि।
ते समभाव परट्ठिया लहु णिव्वाणं लहई।।

जो जीव को जिनवर और जिनवर को जीव मानता है, वह परम साम्य भाव में स्थित होकर अतिशीघ्र निर्वाण पद को प्राप्त करता है। यह है सर्वोत्कृष्ट साम्यवाद, गणतन्त्रवाद, समाजवाद, लोकतन्त्रवाद, वैश्वीकरण।

सत्त्वेशु मैत्रीं गुणिशुप्रमोदं। क्लिष्टेशु जीवेशु कृपापरत्वम्।
माध्यस्थभावं विपरीत वृत्तौ। सदा ममात्मा विदधातु देव।।

हे भगवान् ! मेरा प्रत्येक जीव के प्रति मैत्री भाव रहे,

गुणीजनों में प्रमोद भाव रहे, दुःखीजनों के लिए करुण भाव रहे, दुर्जनों के प्रति मेरा माध्यस्थ भाव (साम्यभव) रहे।

आत्मवत्परत्र कु□ाल वृत्ति चिन्तनं शक्तिस्त्याग तपसी च धर्माधिगतोपायाः (नीतिवाक्यामृत)

अपने ही समान दूसरे प्राणियों का हित (कल्याण)–चिन्तवन करना, शक्ति के अनुसार पात्रों को दान देना और तपश्चरण करना ये धर्म प्राप्ति के उपाय हैं।

'सर्वेसत्वेशु हि समता सर्वा चरणानां परमं चरणम्'।।

समस्त प्राणियों में समता भाव रखना एवं उनकी रक्षा करना सभी सत्कर्त्तव्यों में सर्वोतम कर्त्तव्य है।

'सर्वेऽपि सुखिनः सन्तु सर्वे सन्तु निरामयाः।
सर्वे भद्राणि प□यन्तु मा क□ाचत् दुःख माप्नुयात्।।''

सम्पूर्ण जीव जगत् सुखी, निरोगी, भद्र, विनयी, सदाचारी रहे। कोई भी थोड़े भी दुःख को प्राप्त न करे।

जैन तीर्थंकर, महात्मा बुद्ध, ईसा मसीह, आध्यात्मिक साधु–संत–साधक ऐसे ही आध्यात्म वैश्वीकरण (स्प्रीरिच्यूयल ग्लोबलाइजेशन) के शोधक–बोधक, प्रचारक होते हैं। यह ही पवित्र, सर्वोच्च, सार्वभौम वैश्वीकरण है। जैन धर्मानुसार सम्पूर्ण अनन्त शुद्ध जीव अनन्त काल तक स्व–स्व अनन्त आध्यात्मिक वैभव को भोगते हुए भी दूसरी किसी भी जीव प्रजातियों को तथा प्रकृति के किसी भी घटक को किसी भी प्रकार की क्षति पहुँचाये बिना अनन्त सुखानुभव करते रहते

हैं। यह ही मेरा (आ. कनकनन्दी) परम अन्तिम लक्ष्य है।

(2) **प्राकृतिक वैश्वीकरण**–जैन धर्म में वर्णन पाया जाता है कि अति प्राचीन काल में भारत में जो आर्य लोग एवं पशु–पक्षी रहते थे वे प्रकृति की गोद में प्राकृतिक 10 प्रकार के कल्पवृक्षों से भोजन, पानी, वस्त्र, पात्र, प्रकाश, घर आदि वृक्षों को बिना पीडा पहुँचाये प्राप्त करके सुखमय स्वतंत्रता पूर्ण दीर्घ जीवन जीते थे। उस समय भी परस्पर में कोई स्वामी–सेवक, राजा–प्रजा, शोषक–शोषित आदि भेद–भाव नहीं था। वे कला, संगीत आदि से सहित होकर दीर्घ काल तक निरोगमय भयमुक्त सुखमय जीवन व्यतीत करते थे, जमीन, वृक्ष आदि किसी के भी व्यक्तिगत नहीं होते थे तथा किसी भी प्रकार सीमा निर्धारण या स्वामित्व नहीं था। जैसा कि अभी भी सूर्य किरण, वायु, बादल पर किसी भी व्यक्ति, जाति समूह, राष्ट्र, मनुष्य या पशु–पक्षी का एकाधिकार नहीं है। उस समय न कोई लोकतंत्र था नहीं राजतंत्र, न ही समाजवाद, न ही पूंजीवाद, न ही धनी गरीब की समस्या (सब को समान प्रचुर प्राकृतिक भौतिक साधनों का सहज–सुलभ उपलब्धि) परतंत्रता–स्वतंत्रता के विकल्प से रहित प्राकृतिक साम्यवाद जो कानून–संविधान–राजनीति से सर्वथा रहित। जैन धर्मानुसार ऐसी परिस्थिति बहुत काल तक प्रवाहवान् रही।

णत्थि असण्णी जीवो, णत्थि तहा सामि भिच्च भेदो य।
कलह–महाजुद्धादी, ईसा–रोगादि ण हु होंति।।332

इस काल में असंज्ञी जीव नहीं होते तथा स्वामी और भृत्य का भी भेद नहीं होता। इसी प्रकार नर–नारी कान्ति से सहित और कलह एवं युद्धादिक विरोधकारक भाव भी नहीं होते।

रत्ति–दिणाणं भेदो,तिमिरादव–सीद–वेदणा–णिंदा।
परदार–रदी परधण–चोरी या णत्थि णियमेण।। 333

प्रथम काल में नियम से रात–दिन का भेद, अन्धकार, गर्मी व शीत की वेदना, निन्दा, परस्त्री रमण और परधन हरण नहीं होता।

जिस प्रकार विज्ञान की अपेक्षा पृथ्वी के आदिकाल में वर्षा का अभाव था, उसी प्रकार सुषमासुषमा काल में जल वृष्टि नहीं होती थी। वर्षाभाव में तथा अति उत्तम वातावरण के कारण कृमि, कीट–पतंगा, विषाक्त क्षुद्र जीव जन्तु बिच्छु आदियों का अभाव था। पृथ्वी आदि अत्यन्त स्वच्छ, पवित्र एवं शोभायुक्त थी। मनवांछित खाद्य सामग्री, गृहोपकरण, यान–वाहन, पोशाक, दीपक आदि जीवनयापन निमित्तक वस्तुओं को यथेष्ट रूप से देने वाले अनेक कल्पवृक्ष पृथ्वी पर थे। उस समय भोगभूमि में मनुष्य तथा तिर्यंच अत्यन्त सरल, मन्द कषायी होते थे। युद्ध, विग्रह, कलह आदि से रहित होने के कारण जीवन अत्यन्त सुख–शान्ति पूर्ण था। उस काल में मनुष्य की बात ही क्या यहाँ तक कि सिंह, व्याघ्र, सर्प आदि भी मांस तक नहीं खाते थे।

गाम–णयरीद सव्वं ण होदि ते होंति दिव्व–कल्पतरु।
णिय–णिय–मण–संकप्पि–वत्थूणिं देंति जुगलाणं।। 341

इस समय वहाँ पर गाँव व नगरादिक सब नहीं होते, केवल वे सब कल्पवृक्ष होते हैं जो युगलों को अपने–अपने मन की कल्पित वस्तुओं को दिया करते हैं।

भोग–भूमिजों की श्रोत्र इन्द्रिय गीत श्रवण में, चक्षु रूप में, घ्राण सुन्दर सौरभ में, जीह्वा विविध प्रकार के रसों में और स्पर्शन इन्द्रिय में रमण करती है। इस प्रकार परस्पर में आसक्त हुए वे युगल नर–नारी उत्तम भोग सामग्री के निरन्तर सुलभ होने पर भी इन्द्रिय विषयों में तृप्ति को नहीं पाते।

जुगलाणि अणंतगुणं, भोगं चक्कहर–भोग–लाहादो।
भुंजति जाव आउं, कदलीघादेणरहिदाणि।।357

ये भोग–भूमिजों के युगल कदलीघात मरण से रहित होते हुए आयु पर्यन्त चक्रवर्ती के भोग समूह की अपेक्षा अनन्त गुणे भोग को भोगते हैं।

कप्पदुम–दिण्ण–वत्थुं, घेत्तूण विकुव्वणाए बहुदेहे।
कादूणं ते जुगला, अणेय–भोगाई भुजंति।। 358

ये युगल कल्पवृक्षों से दी गई वस्तुओं को ग्रहण करके और विक्रिया से बहुत से शरीरों को बनाकर अनेक प्रकार के भोगों को भोगते हैं।

पुरिसा वर–मउड–धरा, देविंदादों वि सुंदरायारा।
अच्छर–सरिसा इत्थी, मणि–कुंडल–मंडिय–कवोला।।359

वहाँ पर उत्तम मुकुट को धारण करने वाले पुरुष इन्द्र

से भी अधिक सुन्दराकार और मणिमय कुण्डलों से विभूषित कपोलों वाली स्त्रियाँ अप्सराओं के सदृश होती हैं।

भोग–भूमि में उत्पन्न होने का कारण

भोग भूमि में वे सब जीव उत्पन्न होते हैं जो मिथ्यात्व भाव से युक्त होते हुए भी मंदकषायी हैं, पैशुन्य एवं असूयादि गुणों से रहित हैं, मांसाहार के त्यागी हैं, मधु, मद्य, और उदुम्बर फलों के भी त्यागी हैं, सत्यवादी हैं, अभिमान से रहित हैं, वेश्या और परस्त्री के त्यागी हैं, गुणियों और गुणों में अनुरक्त हैं, आधीन होकर जिनपूजा करते हैं, उपवास से शरीर को कृश करने वाले हैं, आर्जवादि से सम्पन्न हैं तथा उत्तम एवं विविध प्रकार के योगों से युक्त अत्यन्त निर्मल संयम के धारक और परिग्रह रहित ऐसे पात्रों को भक्ति से आहार दान देने में तत्पर हैं।

आहाराभय–दाणं विविहोसह–पोत्थयादि–दाणं च।
पत्त–विसेसे दादूण भोग भूमीए जायंति।।371

शेष कितने ही मनुष्य आहारदान, अभयदान, विविध प्रकार की औषधी तथा ज्ञान के उपकरण पुस्तकादि के दान को दान देकर भोग भूमि में उत्पन्न हुए हैं।

कोई पात्र विशेषों को दान देकर और कोई दोनों की अनुमोदना करने से तिर्यंच भी भोग भूमि में उत्पन्न हुए हैं।

एवं मिच्छादिट्ठी, णिग्गंथाणं जदीण दाणाइं।
दादूण पुण्ण–पाके, भोगमही केइ जायंति।।370

इस प्रकार कितने ही मिथ्यादृष्टि मनुष्य निर्ग्रंथ यतियों को दानादि देकर पुण्य का उदय आने पर भोगभूमि में उत्पन्न हुए हैं।

जैन धर्मानुसार सर्वार्थसिद्धि के देवों की परिस्थिति व्यवस्था, आनन्दानुभूति, स्वतंत्रता, आयु, पवित्रता, आदि भी उपर्युक्त आर्य से भी श्रेष्ठ है तथापि आध्यात्मिक वैश्वीकरण से कनिष्ट है। क्योंकि आध्यात्मिक वैश्वीकरण में आत्मा की सम्पूर्ण पवित्रता, सम्पूर्ण स्वतंत्रता, अनन्त ज्ञान–सुख–वीर्यादि गुणों से युक्तता होती है परन्तु अन्य में तथा अन्यत्र ऐसा संभव नहीं है।

अहमिन्द्र में समानता एवं स्वतंत्रता–

धर्मगोष्ठिष्वनाहूतमिलितैः स्वसमृद्धिभिः।
संभाषणादरोऽस्यासीदहमिन्द्रैः शुभंयुभि।। 138

धर्मगोष्ठियों में बिना बुलाये सम्मिलित होने वाले, अपने ही समान ऋद्धियों को धारण करने वाले और शुभ भावों से युक्त अन्य अहमिंद्रों के साथ संभाषण करने में उसे बडा आदर होता था। अतिशय शोभा का धारक वह अहमिंद्र कभी तो अपने मन्दहास्य के किरण रूपी जल के पूरों से दिशारूपी दीवालों का प्रक्षालन करता हुआ अहमिंद्रों से तत्त्वचर्चा करता था और कभी अपने निवास स्थान के समीपवर्ती उपवन के सरोवर के किनारे की भूमि में राजहंस पक्षी के समान अपनी इच्छानुसार विहार करता हुआ चिरकाल तक क्रीडा करता था। अहमिंद्रों का परक्षेत्र में विहार नहीं होता क्योंकि

शुक्ल लेश्या के प्रभाव से अपने ही भोगों–द्वारा संतोष को प्राप्त होने वाले अहमिंद्रों को अपने निरुपद्रव सुखमय स्थान में जो उत्तम प्रीति होती है वह उन्हें अन्यत्र कहीं नहीं प्राप्त होती। यही कारण है कि उनकी परक्षेत्र में क्रीडा करने की इच्छा नहीं होती है।

अहमिन्द्रोऽस्मि नेन्द्रोऽन्यो मत्तोऽस्तीत्यात्त कत्थनाः।
अहमिन्द्राख्यया ख्यातिं गतास्ते हि सुरोत्तमाः।।143

"मैं ही इन्द्र हूँ, मेरे सिवाय अन्य कोई इन्द्र नहीं है" इस प्रकार वे अपनी निरन्तर प्रशंसा करते रहते हैं और इसलिए वे उत्तम देव अहमिंद्र नाम से प्रसिद्धि को प्राप्त होते हैं।

नासूया परनिन्दा वा नात्मश्लाघा न मत्सरः।
केवलं सुखासद्भूता दीव्यन्ते ते प्रमोदिनः।।144

उन अहमिंद्र के न तो परस्पर में असूया है, न परनिन्दा है, न आत्म प्रशंसा है और न ईर्ष्या ही है। वे केवल सुखमय होकर हर्षयुक्त होते हुए निरन्तर क्रीडा करते रहते हैं।

स एष परमानन्दं स्वसादभूतं समुद्वहन्।
त्रयस्त्रिंशत्पयोराशिप्रमितायुर्महाद्युतिः।।145

वह वज्रनाभि का जीव अहमिंद्र अपने आत्मा के अधीन उत्पन्न हुए उत्कृष्ट सुख को धारण करता था, तैंतिस सागर प्रमाण उसकी आयु थी और स्वयं अतिशय दैदीप्यमान था। वह समचतुरस्र संस्थान से अत्यन्त सुन्दर, एक हाथ ऊँचे और हंस के समान श्वेत

शरीर को धारण करता था। वह साथ–साथ उत्पन्न हुए दिव्य वस्त्र, दिव्य माला और दिव्याभूषणों से विभूषित जिस मनोहर शरीर को धारण करता था वह ऐसा जान पडता था मानों सौन्दर्य का समूह ही हो। उस अहमिंद्र की वेशभूषा तथा विलास–चेष्टाएँ अत्यन्त प्रशान्त थीं, ललित (मनोहर) थी, उदात्त (उत्कृष्ट) थीं और धीर थीं।

इस प्रकार वह अहमिंद्र ऐसे उत्कृष्ट पद को प्राप्त हुआ जो इन्द्रादि देवों के भी अगोचर है, परमानन्द देने वाला है और सबसे श्रेष्ठ है। वह अहमिंद्र तैंतीस हजार वर्ष व्यतीत होने पर मानसिक दिव्य आहार ग्रहण करता हुआ धैर्य धारण करता था और सोलह महीने पंद्रह दिन व्यतीत होने पर श्वासोच्छ्वास ग्रहण करता था। इस प्रकार वह अहमिंद्र वहाँ (सर्वार्थसिद्धि में) सुखपूर्वक निवास करता था। अपने अवधिज्ञानरूपी दीपक के द्वारा त्रसनाडी में रहने वाले जानने योग्य मूर्तिक द्रव्यों को उनकी पर्यायों सहित प्रकाशित करता हुआ वह अहमिंद्र अतिशय शोभायमान होता था। उस अहमिंद्र के अपने अवधिज्ञान के क्षेत्र बराबर विक्रिया करने का भी सामर्थ्य था, परन्तु वह राग रहित होने के कारण बिना प्रयोजन कभी विक्रिया नहीं करता था, उसका मुख कमल के समान था, नेत्र नील कमल के समान थे, गाल चन्द्रमा के तुल्य थे और अधर बिम्बफल की कान्ति को धारण करते थे।

जिनेन्द्रदेव ने जिस एकान्त और शान्तरूप सुख का निरुपण किया है मालूम पडता है वह सभी सुख उस अहमिंद्र में

जाकर इकट्ठा हुआ था।

जब जीव सम्यग्दृष्टि संम्पन्न होता है तब वह प्रत्येक द्रव्य के स्वरूप के साथ–साथ स्वशुद्ध–आत्म स्वरूप का भी सम्यक् श्रद्धान एवं विज्ञान करता है। इसे ही " तत्त्वार्थ श्रद्धानं सम्यक्दर्शनम्" कहते हैं। इतना ही नहीं वह स्व–स्वरूप का मनन, चिंतन, ध्यान, शुद्ध दृष्टि से भगवान् रूप में करता है। यथा–

सोहंशुद्धोऽहम् बुद्धोऽम् परंब्रह्मोऽहम्
में वही परम् तत्त्व हूँ, मैं बुद्ध हूँ, मैं परम ब्रह्म हूँ।
अहमेक्को खलु सुद्ध दंसणणाण सयारुवि।
णवि अत्थि मझ किंचिवि अण्ण परमाणु मेंत्तवि।।

निश्चय से मैं एक हूँ, शुद्ध हूँ, दर्शन–ज्ञान से युक्त हूँ, अमूर्तिक स्वरूप हूँ, मेरे मध्य में अन्य परमाणु मात्र भी नहीं है। उपर्युक्त चिंतन, ध्यान में दुराभिमान नहीं है परन्तु स्वआत्म का शुद्ध चिंतन है। इस चिंतन के कारण ही मानव ही धीरे–धीरे महामानव एवं भगवान् बन जाता है क्योंकि "As you think so you become" अर्थात् हम जैसा चिंतन करते है उसी प्रकार परिणमण करते हैं। यदि आत्मा का शुद्ध चिंतन नहीं किया जाये तो स्वाभविक रूप से अशुद्ध चिंतन, विकृत चिंतन, घमण्ड पूर्ण चिंतन होगा और इस चिंतन से उसका परिणमन भी तदनुकूल विकृत परिणमन होगा इसलिए विकृत परिणाम से बचने के लिए तथा शुभ एवं शुद्ध परिणमन करने के लिए शुभ, शुद्ध, विधेय पूर्ण चिंतन (Positive

thinking) करना केवल आवश्यक ही नहीं है अनिवार्य भी है।

(3)धार्मिक–साम्प्रदायिक वैश्वीकरण– अनेक धर्म के संस्थापक, साधु–संत, धर्म प्रचारक, राजा–महाराजा, अनुयायी, सरकार आदि ने अपने–अपने पंथ–मत–परम्परा को जनधर्म, राष्ट्र धर्म से लेकर विश्व धर्म रूप में प्रचार–प्रसार संस्थापित करने के लिए नैतिक या अनैतिक रूप से प्रवचन, प्रलोभन, प्रताडना से लेकर आक्रमण, विध्वंस, लूट–पाट, बलात्कार, हत्या, युद्ध आदि किया है और अभी भी वैज्ञानिक युग में भी हो रहा है। यदि सर्वोदय के लिए उदार, सहिष्णु, अहिंसक, निर्लोभ आदि पवित्र भाव से विश्वकल्याण के लिए सर्वजनहिताय–सर्वजनसुखाय, समतामय, अहिंसापूर्ण, सर्वजीव समान–अधिकार युक्त, विश्व मैत्री, विश्व शान्तिकारक सत्य–तथ्यपूर्ण धर्म का प्रचार–प्रसार–स्थापन होता है तो उचित है, ग्राह्य है। परन्तु मेरी जानकारी में इस प्रकार के धर्म का अभी तक प्रचार–प्रसार–संस्थापन उपर्युक्त उत्तम भाव एवं पद्धति से नहीं हुआ है। भले ऐसे भाव एवं व्यवहार के अनेक महात्मा पुरुष हो गये हैं। क्योंकि विश्व के प्रत्येक जीव के भाव–एवं व्यवहार उपर्युक्त नहीं होता है। मेरी भावना एवं प्रवृति/पद्धति उपर्युक्त उत्तम धर्म की स्थापना उपर्युक्त पद्धति में विश्व में होने की है। आध्यात्मिक वैश्विकरण के कारणभूत धार्मिक वैश्वीकरण होने से यह वैश्वीकरण द्वितीयतः श्रेष्ठ होने पर भी कुछ आध्यात्मिक महापुरुषों के अतिरिक्त इसे अधिकांश व्यक्ति संकीर्णता, कट्टरता, भेद–भाव पूर्ण

घृणात्मक, क्रूरतामय रूप से स्वीकार करते हैं, प्रयोग में लाते हैं इसलिए इसका प्रतिफल सामाजिक से लेकर वैश्विक रूप से उपकारक कम अपकारक अधिक पाया जाता है क्योंकि धार्मिक उन्माद, कट्टरता, आक्रामकता आदि कारण से प्रत्येक धर्म में ही अनेक भेद–भाव से लेकर धर्म युद्ध तक होते हैं।

(4)सेवा–के वैश्वीकरण–धर्म, जाति, धनी–गरीब, भाषा, राष्ट्र की सीमा से परे पीडित मानव मात्र की सेवा करने वाले सेवा धर्मी व्यक्ति से लेकर संस्थापक जो सेवा–सहयोग करते हैं वह सेवात्मक–वैश्वीकरण है। जैनधर्म में वर्णन पाया जाता है कि राम–रावण युद्ध में भी दोनों पक्ष के घायल सैनिकों की सेवा–व्यवस्था करने वाले भी थे। वर्तमान रेडक्रास, एम्बुलेन्स, रोटरी क्लब, लायन्स क्लब, यूनीसेफ, नारायण सेवा संस्थान, महावीर इन्टरनेशनल आदि संस्थान इसके कुछ उदाहरण हैं। यह वैश्वीकरण आध्यात्मिक वैश्वीकरण के अनन्तर श्रेष्ठ, पवित्र, प्रायोगिक, व्यावहारिक, पीडीतजन उपकारी वैश्वीकरण है। क्योंकि इससे सम्पूर्ण संकीर्ण सीमातीत सेवा सहयोग विश्व–पीडीत मानव के लिए होता है जिससे दिल से दिल जुडता है; जिसके कारण विद्वेष, भेद–भाव दूर होकर विश्वमैत्री, विश्वप्रेम, प्रायोगिक अहिंसा का प्रचार–प्रसार–स्थापना होती है। जो कार्य धार्मिक वैश्वीकरण से नहीं हो पाता वह कार्य भी सेवा–वैश्वीकरण से हो पाता है क्योंकि सेवा में धार्मिक–सम्प्रदाय के समान संकीर्णता, कट्टरता, अहंमन्यता आदि अनुदार भाव एवं व्यवहार नहीं होता है।

(5) पारिस्थितिकी–वैश्वीकरण– आधुनिक विज्ञान के अनुसार विश्व के प्रत्येक जीव प्रजाति, प्राकृतिक तत्त्व परस्पर उपकारी, परस्पर की सत्ता, सुरक्षा, समृद्धि के लिए उपयोगी हैं। इसे इकोसिस्टम, प्राकृतिक संतुलन, पर्यावरण सुरक्षा, पारिस्थितिकी कहते हैं। इसका शोध–बोध आधुनिक विज्ञान के शोध–बोध के लाखों–करोडों वर्ष पूर्व से ही जैन धर्म तथा भारतीय संस्कृति में विद्यमान है। अहिंसा परमो धर्मः, अहिंसामृतम्, सहअस्तित्व, परस्परोपग्रहो जीवानाम्, आत्मवत् सर्वभूतेषु, जीओ और जीने दो, अहिंसा प्रतिष्ठायां तत्सान्निधौ वैरत्यागः आदि सुरक्षा, सामंजस्य, समरसता, समृद्धि, पर्यावरण, पारिस्थितिकी, सहयोग, सहअस्तित्त्व पर्यावरण सन्तुलन सिद्धान्त भारत के प्राचीन पारिस्थितिकी (पर्यावरणीय) वैश्वीकरण के सिद्धान्त के उदाहरण हैं।

आधुनिक पर्यावरण सुरक्षा का शुभारंभ तो अमेरिका के सीनेटर गेलोर्ड नेलसन ने 22 अप्रैल 1970 को एक सार्वजनिक संस्था आयोजित करके किया था जिस में अमेरिका के हजारों लोग शामिल हुए। तभी से 22 अप्रैल को पृथ्वी दिवस मनाने की शुरूआत हुई। आज इस अभियान में 175 देशों के 50 करोड से अधिक लोग जुडे हुए हैं और पृथ्वी को बचाने में लगे हुए हैं। 1972 से 1984 तक इस दिन पेड लगाने के लिए ऐच्छिक अवकाश रहता था किन्तु 1985 से इस दिन अमेरिकी सरकार ने राष्ट्रीय अवकाश घोषित कर दिया था। इस महान् कार्य के लिए अमेरिकी सरकार उत्कृष्ट

सामाजिक कार्यों के लिए दिये जाने वाला दे प्रेसिडेंशियल मेडल आफ फ्रीडम सर्वोच्च सम्मान गेलर्ड को 1995 में राष्ट्रपति बिल क्लिंटन ने प्रदान किया।

आधुनिक विज्ञानानुसार यदि एक प्रजाति का नाश हो जाता है तो उससे सम्बन्धित 32 प्रजातियों का नाश हो जाता है। यदि सम्पूर्ण वृक्ष (वनस्पति) पृथ्वी से लोप हो जायेगें तो प्राणवायु का अभाव हो जायेगा, ग्लोवल वार्मिंग बढ जायेगी जिससे पर्यावरण का सन्तुलन बिगड जायेगा, जिसके फल स्वरूप ग्लेसियर पिघल जायेगा, वर्षा का सन्तुलन बिगड जायेगा, फल, अनाज, लकडी, औषधि, बीज प्राप्त नहीं होगें जिससे अन्यान्य अनेक जीव प्रजातियाँ नष्ट हो जायेगी। इसलिए तो कहा गया है कि–परस्परोपग्रहो जीवानाम्, जीव जीवस्य रक्षणम्, वसुधैव कुटुम्बकम्, पर हत्या आत्मा हत्या है, आत्म हत्या परहत्या है।

जो औरन के सिर काटे अपना रहे कटाय।
धीरे–धीरे नानका बदला कहिं न जाय।।

यह वैश्वीकरण आध्यात्मिक वैश्वीकरण के बाद सर्वश्रेष्ठ वैश्वीकरण है। क्योंकि इस में हर जीव प्रजाति की सुरक्षा समृद्धि होती है।

(6) राजनैतिक–वैश्वीकरण–राजनैतिक दृष्टि से पृथ्वी में समता, सुरक्षा, समृद्धि के लिए जो प्रयास होता है वह राजनैतिक–वैश्वीकरण है। इस का एक उदाहरण है संयुक्त राष्ट्र

संघ। इसमें पृथ्वी के सम्पूर्ण देश सदस्य अभी तक नहीं बने हैं तो 5 ही देश के हाथों में बिटो पावर है। इन पांचों में से भी जो देश जिस समय अधिक शक्तिशाली होता है उस समय उसकी मनमानी चलती है। इसलिए भी यह वैश्वीकरण अभी तक सार्वभौम, निर्विवाद एवं सर्वोदयी नहीं बन पाया है।

पहले ही अनेक चक्रवर्ती–सम्राट, राजा–महाराजा दूसरों के राज्यों को छल–बल–कौशल–आक्रमण–विध्वंस युद्ध–हत्या करके अपने–अधीन करते रहे हैं और स्वयं को पृथ्वी का मालिक, पालनहार, सर्वेसर्वा, उपकारी कर्त्ता–धर्त्ता–हर्त्ता घोषित करते रहे हैं ऐसे राजनैतिक–वैश्वीकरण से लाभ कम किन्तु हानियाँ अधिक होती हैं। द्वितीय विश्वयुद्ध के बाद ऐसा व्यापक आक्रमण–युद्ध आदि तो कम हो रहा है परन्तु थोडा–बहुत तो होता रहता है। स्व–स्वधर्म के प्रचार–प्रसार के लिए भी ऐसे भी राजनैतिक–वैश्वीकरण का असम्यक् आलम्बन अनेक धर्मावलम्बी लेते हैं जिस का वर्णन इस आलेख में किया गया है। जिसका दुष्परिणम अति भंयकर, विध्वंसकारी होता है। इसी प्रकार व्यापार से लेकर राजनैतिक उपनिवेश शासन में भी होता है। इसलिए उपर्युक्त दुष्परिणाम से मानव समाज को मुक्त करने के लिए तथा राजनैतिक, धर्मिक स्वतंत्रता प्राप्त करने के लिए साम्यवाद, समाजवाद, पूँजीवाद, लोकतंत्रात्मक विचार की राजनैतिक क्रान्तियाँ विशेषतः आधुनिक युग में पृथ्वी में हुई। जिससे राजा में केन्द्रित

शक्ति–सत्ता–सम्पत्ति–संप्रभुता विकेन्द्रित होकर प्रजा/नागरिकों को प्राप्त हुई। जिससे पहले के समान राजादि पृथ्वी में जो अन्याय–अत्याचार–शोषण करते थे वह कुछ हद तक कम हुई किन्तु अपनी अपनी राजनैतिक विचार धारा, सत्ता–सम्पत्ति के विस्तार के द्वारा पुनः एक नवीन राजनैतिक–वैश्वीकरण के लिए पुनः संघर्ष से लेकर द्वितीय विश्व युद्ध हुआ। इतना ही नहीं स्व–स्व विचार धारा को स्वीकार नहीं करने वाले अन्य नेता, नागरिक, राष्ट्र आदि को केवल विपक्षी ही नहीं मानते हैं किन्तु विरोधी से लेकर बाधक–शत्रु मानकर उस से भी पूर्वोक्त राजतंत्रात्मक शासकों के द्वारा जो कुकार्य होते थे वे सब कुकार्य ऐसे कट्टर–स्वार्थी राजनैतिक न्यूनाधिक रूप से करते हैं।

(7) आधुनिक व्यापारिक–वैश्वीकरण–यह नारा पश्चिम के देशों ने दिया और पृथ्वी व्यापार के लिए खुल गई। इससे बहुराष्ट्रीय कम्पनियाँ पूरी पृथ्वी में फैल रही हैं। यूरोप महाद्वीप के देशों ने फरवरी 1992 में यूनियन बनाकर सभी सदस्य देशों के नागरिकों के लिए अपनी सीमायें खोल दी। एक से दूसरे देश में आम लोग वीजा लेकर घूमने के लिए जा सकते हैं। उच्च प्रशिक्षित डॉक्टर, इंजीनियर और वैज्ञानिकों को किसी भी देश में अपेक्षाकृत आसानी से प्रवेश मिल जाता है।

1990 से लेकर 2007 तक अकेले अमेरिका में भारत, चीन और रूस से 10 लाख उच्च प्रशिक्षित लोग निश्चित अवधि के लिए

काम करने के लिए पहुँचे हैं। हर साल 20 हजार ऐसे ही अफ्रीकी लोग अपना देश छोडकर अन्य देश में चले जाते हैं। संयुक्त राष्ट्र के अनुसार इस समय 19 करोड 10 लाख लोग अपना देश छोडकर विदेश में हैं। यह संख्या 1990 में 15.5 करोड के करीब थी। प्रायः साडे 11 करोड लोग विकसित देशों में हैं। कुल प्रवासियों में प्रायः 60 % उच्च शिक्षित डॉक्टर, इंजीनियर वैज्ञानिक व शोधकर्ता हैं और उनमें भी 3/4 विकासशील देशों के हैं। अभी हर साल 85 लाख लोग एक देश से दूसरे देश माइग्रेट कर रहे हैं जो कि प्रति हजार में 1.6 है। प्रमुख पश्चिमी देशों में यथा आष्ट्रेलिया में 22 लाख, कनाडा में 33 लाख, न्यूजीलैण्ड में 3 लाख, अमेरिका में 284 लाख, स्विट्जरलैण्ड में 10 लाख, स्पेन में 15 लाख, फ्रांस में 37 लाख, इंग्लैण्ड में 30 लाख तो संयुक्त राष्ट्र संघ की रिपोर्ट के अनुसार दूसरे मूल के नागरिकों के प्रतिशत यूरोप में 34, एशिया में 28, उत्तर अमेरिका में 23, अफ्रीका में 9, लेटिन अमेरिका और केरीवियन द्वीप में 3, आष्ट्रेलिया और न्यूजीलैण्ड में 3 हैं।

प्रमुख देशों में प्रवासी भारतीय– भारतीय मूल के लोग पृथ्वी भर के 130 देशों में फैले हैं। उनमें से अमेरीका में 24,79,424 है। इनमें से प्रायः 6,87,000 का जन्म अमेरीका में ही हुआ है। पिछले 10 साल में 5 लाख से अधिक उच्च प्रशिक्षित यहाँ पहुँचे। भारतीय मूल की कुल आबादी में से 67 % ग्रेजुएट या प्रोफेशनल डिग्री होल्डर और 61 % लोग प्रवन्धन या प्रोफेशनल व्यवसाय में हैं।

इसी प्रकार आस्ट्रेलिया में 1.9 लाख, कनाडा में 8.5 लाख, फ्रांस में 6.5 लाख, जर्मनी में 35 हजार, नीदरलैण्ड में 2.1 लाख, इटली में 71 हजार, इंग्लैण्ड में 12 लाख, मॉरीसस में 7.15 लाख, ओमान में 3.12 लाख, कतर में 1.31, कुवैत में 2.95 लाख, सउदी अरब में 15 लाख, दक्षिण अफ्रीका में 10 लाख, संयुक्त अरब अमीरात में 9.5 लाख भारतीय मूल के लोग निवास कर रहे हैं। अमेरिका के अन्तरिक्ष संगठन 'नासा' में 36 % कर्मचारी भारतीय हैं।

उच्च शिक्षा के लिए प्रवास–जिस प्रकार प्राचीन भारतीय विश्व विद्यालय यथा तक्षशिला, नालन्दा, विक्रमशिला विश्वविद्यालयों में देश–विदेश के हजारों (50–60) हजार विद्यार्थी अनेक विषयों (धर्म से लेकर विज्ञान तक प्राय 50–60 विषय) का अध्ययन हजारों शिक्षकों (8–10 हजार) के द्वारा प्राप्त करते थे उसी प्रकार अभी भी हर साल उच्च शिक्षा के लिए एक देश से दूसरे देश में जाने वाले युवाओं की संख्या 25 लाख है, 23% विद्यार्थी अमेरीका, 12 % इंग्लैण्ड, 11% जर्मनी, 10% फ्रांस, 7 % आस्ट्रेलिया और 7% जापान है। विदेश में अध्ययनरत भारतीय छात्रों में से 80,000 अमेरीका में, 20,000 आस्ट्रेलिया में, 15,0000 ग्रेट ब्रिटेन में, 3,000 कनाडा में, 3,000 न्यूजीलैण्ड में, 1,000 आयरलैण्ड में अध्ययन कर रहे हैं। विदेश में अध्ययनरत छात्रों की कुल संख्या 1,50,000 से भी अधिक है।

विश्व बैंक की रिपोर्ट के अनुसार विकासशील देशों के

युवा अमीर देशों में जाकर काम–काज करने के इच्छुक हैं। बांग्लादेश और इराक के 78%, मलेशिया के 57 % युवा दूसरे देश में काम पे जाना चाहते हैं और 23 % धनी देश में स्थायी तौर पर बसना चाहते हैं। प्रायः 2 लाख 73 हजार बांग्लादेशी दूसरे देश में काम कर रहे हैं। पर्यटन की दृष्टि से देखे तो केवल भारत में ही जनवरी से जुलाई 07 के बीच 27,64,361 पर्यटक आये। ऐसा ही हर वर्ष अन्यान्य देशों में भी लाखों व्यक्ति पर्यटन के लिए जाते हैं। अमीर पश्चिमी देशों में 1990 से 2000 के बीच कॉलेज तक शिक्षित प्रवासियों की संख्या 69% बढी है, वहीं कम शिक्षित प्रवासियों की संख्या 3% बढी। अमेरीका, कनाडा, आष्ट्रेलिया और पश्चिमी यूरोप के देशों सहित 20 देशों में आने वाले 5.2 करोड प्रवासियों श्रमिकों में से 36% कॉलेज स्तर तक शिक्षित है। यह संख्या पिछले दशक की तुलना में 31% अधिक है। रोजगार के लिए एक अमीर देश से दूसरे अमीर देश में पलायन करने वाले प्रवासीयों (कॉलेज तक शिक्षा प्राप्त) की संख्या 30% वृद्धि हुई है। वहीं दो अमीर देशों के बीच अर्द्धकुशल श्रमिकों के पलायन में 8 % की कमी आई है। कभी गरीब देशों के लोग अमीर देशों में जाते थे। अब तो अमीर देशों के लोगों का दूनिया भर में प्रवास हो रहा है और अमीर देशों के बीच भी पलायन प्रवास करना बढता जा रहा है। किसी समय उच्च वर्गीय लोग श्रेष्ठ भविष्य के लिए विदेशों में जाते थे किन्तु अब यह चलन मध्यम वर्ग में ज्यादा हो

गया है। प्रत्येक 10 में से एक अंग्रेज विदेशों में रहता है। इनमें रिटायर्ड लोग भी शामिल हैं। अभी 'प्रवास दोराहा' है।

व्यापारिक एवं शैक्षणिक वैश्वीकरण से लाभ

पिछले साल प्रवासी भारतीयों ने विदेशों से भारत के लिए 26.4 अरब डॉलर भिजवाए। इस राशि में हर साल 25% की वृद्धि हो रही है। नेपाली हर साल 1अरब डॉलर (40 अरब रुपये अपने देश में भेजते हैं। यह राशि नेपाल के सकल घरेलू उत्पाद का 12% है। इससे नेपाल में गरीबी दर में 25% की कमी हो गई है। अधिकतर नेपाली भारत जैसे देश में कार्यरत है। अप्रवासी बंग्लादेशी 2005–06 में 4.8 अरब अमेरीकी डॉलर (192 अरब रुपये) अपने देश भेजे। यह इस देश को दी जाने वाली विदेश सहायता से 3 गुना अधिक है। विकसित देश गरीब देशों के विकास सहायता रूप में प्रायः 70 अरब डॉलर खर्च करते हैं किन्तु विकास सहायता देने और व्यापार के भूमण्डलीकरण से भी अधिक लाभ गरीब देशों के लोगों का काम का अवसर देने पर मिल सकता है। अर्थात् सेवा, दान, सहायता से भी श्रेष्ट है सक्षम बनाना । विकसित देशों में श्रमिकों की 3% संख्या बढाने पर गरीब देश के श्रमिकों को प्रायः 300 अरब डॉलर का लाभ होगा। यह राशि गरीब देशों को विदेशी सहायता के रूप में मिलने वाले लाभ से 4 गुना अधिक है। इससे विकसित देशों को भी 51 अरब डॉलर का सकल लाभ होगा। उससे धनी गरीब, शोषक–शोषित, दानी–भिखारी आदि विषमता दूर होगी; धन, जन,

श्रम का विकेन्द्रियकरण तथा समायोजन होगा जिससे धनी एवं गरीब देश लाभान्वित होंगे। एक दूसरे देश की जनता संस्कृति, भाषा, सभ्यता, परम्परा से परिचय, स्नेह, सहयोग, समन्वय, निर्भरता बढने से राष्ट्रीय, धार्मिक, भाषागत विषमता–कट्टरता दूर होगी जिससे शान्ति, समृद्धि उत्तरोत्तर बढेगी। इससे भी अधिक विकास शिक्षा के आदान–प्रदान, समन्वय, सहयोग से होगा।

उपर्युक्त वैश्वीकरण की हानियाँ एवं कमियाँ– इसके कारण प्रतिभावान्, सक्षम व्यक्ति दूसरे देशों में चले जाने से मूलदेश में उनसे होने वाला लाभ से–प्रत्यक्षतः वंचित हो जाता है। कभी–कभी दूसरे देशों की अपसंस्कृति को भी श्रेष्ठ संस्कृति वाले देश अपना लेते हैं जिससे सांस्कृतिक दृष्टि से हानि होती है। प्रतिभावान् को वीजादि की जो सुविधा है वैसा सामान्य नागरिकों के लिए नहीं है। इससे सामान्य नागरिक वंचित रहते हैं।

देश की सीमा के अन्दर तो नागरिकों में जाति, धर्म रंग, लिंग के आधार पर विशेष भेद–भाव नहीं है किन्तु अन्तर्राष्ट्रीय स्तर पर पूर्णतः ऐसी परिस्थिति नहीं है। अप्रवास के सम्बन्ध में सख्त कानून बनाते हैं जो अप्रवासी के लिए परेशानी है। विकास को देशों के प्ररिप्रेक्ष्य में ही न देखकर प्रत्येक नागरिकों की दृष्टि से भी होना चाहिए। कुछ देश में तो दूसरे देशों के प्रवासी नागरिकों को किसी भी प्रकार के नागरिक अधिकार नहीं मिलता है। अप्रवासी नागरिकों के कारण स्वदेश नागरिकों को रोजगार नहीं मिलेगा– इस भय से

भी दूसरे देश के नागरिकों को स्वदेश में आने के लिए वीजा नहीं देते हैं। अकुशल अर्थात् उच्च शिक्षा रहित दूसरे देश के नागरिकों को भी वीजा नहीं देते हैं। अधिक संख्या में प्रवासी से आन्तकवाद अपराध आदि बढने की भी आशंका रहती है। सांस्कृतिक विविधता रखने वाले प्रवासी के कारण स्थानीय संस्कृति के लिए खतरा हो सकता है। प्रवासिओं के कारण सार्वजनिक सुविधाओं का उपभोग स्थानीय लोगों के लिए कम करने के लिए मिलेगा और राजकोषीय भार बढेगा। बहुर्राष्ट्रीय कम्पनी के कारण स्थानीय लघु उद्योग, परम्परागत कुटीर उद्योग के ऊपर विपरीत प्रभाव पडता है, लघु उद्योग, कुटीर उद्योग नष्ट होते हैं जिससे उस में कार्यरत व्यक्तिओं की बेकारी बढती है, उससे सम्बन्धित ज्ञान, कला, परम्परा, उत्पादन का नाश होता है या कमी हो जाती है। कुछ देश में कुशल युवकों की संख्या अधिक है तो कुछ देशों में वृद्धों की संख्या अधिक है। अतः यदि अधिक संख्या वाले देशों से युवा अधिक वृद्धों वालों के देश में कार्य के लिए नहीं जायेगें तो दोनों प्रकार के देशों के लिए यह परिस्थिति हानिकारक होगी।

यथार्थ वैश्वीकरण एवं विश्व नागरिकता

सूर्य, चन्द्र, ग्रह, नक्षत्र, आकाश गंगा, वायु, सूर्य किरण आदि के समान पृथ्वी भी प्राकृतिक है। प्रकृति के अंगभूत पशु, पक्षी, नदी, पर्वत वृक्ष आदि के समान समस्त मानव भी प्रकृति के ही अवयव स्वरूप हैं। अतः किसी व्यक्ति या राष्ट्र के मानव या पृथ्वी

के समस्त मानव के लिए भी पृथ्वी निजी सम्पत्ति नहीं है। क्योंकि किसी ने भी न पृथ्वी को निर्माण किया या खरीदा अथवा पृथ्वी को बपौति रूप से प्राप्त किया अथवा दान से मिली है। **पृथ्वी के समस्त प्राणी जगत् की जननी (माँ) पृथ्वी होने से समस्त प्राणी (मनुष्य–पशु–कीट–पतंग से लेकर वनस्पति) को पृथ्वी में स्वतंत्रता पूर्वक समतामय जीवन यापन करने का पूर्ण प्राकृतिक न्यायगत अधिकार प्राप्त है।** इस में स्व स्वतंत्रता के साथ–साथ दूसरों की स्वतंत्रता की रक्षा करना; समता में दूसरों के प्रति विषमता के भाव–व्यवहार से रहित होना, अधिकार के साथ स्व–नैतिक कर्तव्य का पालन करना भी नैसर्गिक रूप से गर्भित है। इसके बिना स्वतंत्रता, समानता, अधिकार भी संभव हो नहीं सकते हैं।

इस परिस्थिति में केवल पृथ्वी के समस्त मानव ही विश्व नागरिक नहीं होगें परन्तु समस्त प्राणी जगत् विश्व नागरिक होगें। उस समय मानव कृत विश्व मानवाधिकार ही नहीं होगा परन्तु प्राकृतिक विश्व प्राणी समानाधिकार होगा। मनुष्य कानून बनाकर भी अन्य जीवों के अधिकार, स्वतंत्रता समानता का हनन नहीं करेगा, उन्हें गुलाम नहीं बनायेगा, उन्हें मारेगा नहीं, मारकर मांस नहीं खायेगा, उनके प्राकृतिक निवास–पर्यावरण का विनाश नहीं करेगा जिस प्रकार कि पूर्व में वर्णन किया गया है कि भोगभूमिज आर्य लोग, सर्वार्थसिद्धि

के देव तथा सिद्ध–शुद्ध जीव हिंसा, असत्य, चोरी, कुशील, परिग्रह की तृष्णा से यथा योग्य रहित होकर सरल–सहज, पवित्र, सुख–शान्तिमय दीर्घकाल (सिद्ध जीव की अपेक्षा अनन्तकाल) जीते हैं उसी प्रकार पृथ्वी के जीव भी उपर्युक्त दोषों से रहित एवं गुणों से सहित "जीओ और जीने दो" के अनुसार जीयेगें तो यथार्थ से वैश्वीकरण होगा। इस वैश्वीकरण में मानव कृत कृत्रिम भौगोलिक, राजनैतिक, आर्थिक, सामाजिक, जातिगत, धर्मगतादि विषमतापूर्ण भेद–भाव से सहित, घातक, अशान्तिकर सीमा नहीं रहेगी। सब के भाव एवं व्यवहार निम्न प्रकार होगें–

सम्पूजकानां प्रतिपालकानां,
यतीन्द्र–सामान्य–तपोधनानाम्।
देशस्य राष्ट्रस्य पुरस्य राज्ञः,
करोतु शान्तिं भगवन्–जिनेन्द्रः।।14

हे जिनेन्द्रदेव! श्रद्धा से आपकी आराधना करने वाले आराधकों को, धर्म के आयतन–देव, शास्त्र, गुरु और तीर्थों की रक्षा करने वालों को, आचार्यों, सामान्य तपस्वियों, मुनियों आदि सर्व संयमियों को, देश, राष्ट्र, नगर, प्रजा सभी को शान्ति प्रदान कीजिये।

क्षेमं सर्वप्रजानां प्रभवतु, बलवान् धार्मिको भूमिपालः।
काले काले च सम्यग् वितरतुमघवा, व्याधयो यान्तु नाशम्।।
दुर्भिक्ष चौरमारिः क्षणमपि जगतां, मास्मभूज्जीव–लोके।

जैनेन्द्रं धर्मचक्रं प्रभवतु सततं, सर्व–सौख्य–प्रदायि।।15

हे प्रभो! लोक में समस्त प्रजा का कल्याण हो, राजा बलवान् और धार्मिक हो, सर्व दिग्दिगन्त में समय–समय पर मेघ यथायोग्य जलवृष्टि करते रहें, कहीं भी अतिवृष्टि रूप प्रकोप न हो मानसिक–शारीरिक बीमारियों का नाश हो, तथा लोक में जीवों को कभी भी क्षण–मात्र के लिए भी दुष्काल, चोरी, मारी, रोग, हैजा, मिरगी आदि न हों। वीतराग जिनेन्द्र का धर्मचक्र जो प्राणीयों के लिए सुखप्रदायक है, सदा प्रभावशाली बना रहे। हे विभो! आपका जिनशासन सर्वलोक में विस्तृत हो, लोकव्यापी जिनधर्म कल्याणकारी हो।

तद्द्रव्यमव्ययमुदेतु शुभः स देशः,
संतन्यतां प्रतपतां सततं स कालः।
भावः स नन्दतु सदा यदनुग्रहेण,
रत्नत्रयं प्रतपतीह मुमुक्षवर्गे।।16

जिनके अनुग्रह से यहाँ मोक्ष की इच्छा करने वाले मुनियों में रत्नत्रय अस्खलित प्रकाशित रहे ऐसा वह द्रव्य उत्पन्न होओ वह शुभ देश/शुभ स्थान मुनियों को मिले सदा उन मुनियों के रत्नत्रय समीचीन तप की वृद्धि हो वह उत्तमकाल मुनियों को प्राप्त हो तथा सदा आत्मा के निर्मल परिणामों से प्रसन्न हों वह भाव मुनियों को प्राप्त हो।

प्रध्वस्त घाति कर्माणः–केवलज्ञान भास्कराः।
कुर्वन्तु जगतां शान्तिं, वृषभाद्या जिनेश्वराः।।17

ज्ञानावरण, दर्शनावरण, मोहनीय व अन्तराय इन चार घातिया कर्मों का जिन्होंने समूल क्षय कर दिया है तथा जो केवलज्ञान रूपी सूर्य से सर्वजगत् को प्रकाशित् करते हुए शोभा को प्राप्त हैं ऐसे वृषभनाथ को आदि लेकर तीर्थंकर महावीर पर्यन्त चतुर्विशति तीर्थंकर जगत् के समस्त प्राणियों को शान्ति, सुख, क्षेम, कुशल, प्रदान करें।

शान्ति शिरोधृत जिनेश्वर शासनानां,
शान्तिः निरन्तर तपोभव भावितानां।
शान्तिः कषाय जय जृम्भित वैभवानां,
शान्तिः स्वभाव महिमानमुपागतानाम्।।1

हे शान्तिनाथ भगवान्! जिन शासन की आज्ञा को शिरोधार्य करने वाले भव्यजीवों को शान्ति/सुख की प्राप्ति हो। अखंड रूप से तप में लीन मोक्ष के इच्छुक मुनियों को शान्तरस रूप शुक्लध्यान की प्राप्ति हो, कषयों को जीतकर आत्मानन्द को प्राप्त करने वालों को समतारस रूप शान्ति प्राप्त हो तथा जो आत्म स्वभाव की महिमा को प्राप्त कर चुके हैं ऐसे यतियों को शाश्वत शान्ति रूप सिद्धपद की प्राप्ति हो।

जीवन्तु संयम सुधारस पान तृप्ता,
नंदंतु शुद्धं सहसोदय सुप्रसन्न।

सिद्धयंतुसिद्धि सुख संगकृताभियोगाः
तीव्रं तपन्तु जगतां त्रितयेऽर्हदाज्ञा।।2

हे शान्तिनाथ भगवान् ! संयमरूपी अमृत का पान करने से पूर्ण तृप्त ऐसा मुनि समूह सदा जीवन्त रहे अर्थात् पृथ्वी पर सदा मुनिजनों का विचरण होता रहे। आत्मानन्द के उदय से सदा प्रसन्न रहने वाले यति गण शाश्वत आनन्द को प्राप्त हों। मुक्ति लक्ष्मी की प्राप्ति के लिये उपसर्ग, परिषहों को सहन कर और तपश्चरण का उद्योग करने में तत्पर मुनिराज सिद्धि सुख को प्राप्त हों। तथा अर्हंत् देव का शासन तीन लोक में सम्पूर्ण पृथ्वीमण्डल पर विशेष प्रभावना को प्राप्त हो।

शान्तिः शंतनुतां समस्त जगतः, संगच्छतां धार्मिकैः।
श्रेयः श्री परिवर्धतां नयधरा, धुर्यो धरित्रीपतिः।।
सद्विद्यारसमुद्गिरन्तु कवयो, नामाप्यघस्यास्तु मां।
प्रार्थ्यं वा कियदेक एव, शिवकृद्धर्मो जयत्वर्हताम्।।3

हे शान्तिनाथ प्रभो! तीन लोक के समस्त प्राणी सुखी हो धर्मात्मा जीवों को कल्याणकारी स्वर्ग–मुक्ति लक्ष्मी प्राप्त हो, नीति न्याय का घर–घर में प्रचार हो, पृथ्वी का राजा शूरवीर हो। विद्वान् लोग उत्तम शिक्षा का प्रसार करें जिससे किसी में पाप का नाम भी न रहे/ पृथ्वी पर पाप का नाम भी न रहे और अन्त में क्या माँगू, बस एक ही माँगता हूँ, वह यह कि "वीतराग जिनदेव/ अर्हंत् भगवन्त का मोक्षदायक जिनधर्म" सदा पृथ्वी मण्डल पर जयवन्त रहे।

"आप भला तो जगत् भला" 'हम बदलेगें युग बदलेगा' "जो पिंडे सो ब्रह्माण्डे" के अनुसार विश्व के प्रत्येक जीव यदि "आत्मनः प्रतिकूलानि परेषां न समाचरेत्" "तेन त्यक्तेन मुंजिता न गृद्ध कश्वचित् धनम्" के अनुसार व्यवहार करेगें तो " जीव जीवस्य भक्षणम्" संघर्षमय जीवन, शक्ति ही शासन के परिवर्तन में जीव जीवस्य रक्षणम्, सहयोगमय जीवन, शान्ति एवं आत्मानुशासान ही शासन बनेगा। जिससे आध्यात्ममय, समतापूर्ण, वैश्वीकरण की स्थापना होगी। आध्यात्म आत्मा के शुद्ध स्वरूप होने से आध्यात्म भौतिक–मूर्तिक रहित चैतन्य स्वरूप सत्यंशिवंसुन्दरम्, सच्चिदानन्द, अनन्त अव्यय, अव्याबाध, शाश्वतिक, अक्षय–अनन्त सुख–शान्ति शक्ति स्वरूप होने स्व–पर अबाधक, अघातक, अपीडाकारक, स्वतंत्र–स्वाधीन, स्वानुशासी, सार्वभौम, आनन्दानुभूति रूप है जो कि अन्य संकीर्णता, स्वार्थपरता, क्रूरता, कट्टरतापूर्ण वैश्वीकरण में संभव नहीं है। क्योंकि शान्ति, समता, एकता, विश्वमैत्री, प्रेम, वैश्वीकरण, वसुधैवकुटुम्बकम् आदि भौतिक से अधिक भावात्मक, आध्यात्मिक है। As you think so you become के अनुसार भावानुसार/ परिणामानुसार कार्य होता है, परिणाम (फल) होता है। यथा–

पहिया जे छप्पुरिसा परिभट्टारण्णमज्झदेसम्हि।
फल भरियरूक्खमेगं पेक्खित्ता ते विचिंतंति।।507
णिम्मूलखंधसाहुवसाहं छित्तुं चिणितु पडिदाइं।
खाउं फलाई इदि जं मणणे वयणं हवेकम्मं।।508

गो.जी.पृ.सं.586

फलों से लदे वृक्ष को देखकर कृष्ण लेश्या (अशुद्धतमभाव) वाला विचार करता है कि इस वृक्ष को जड मूल से उखाउकर फल खाने चाहिए। नील लेश्या (अशुभतर भाव) वाला विचार करता है कि वृक्ष के स्कन्ध (तने) को काटकर फल खाने चाहिए। कापोत लेश्या (अशुद्ध भाव) वाला विचार करता है कि इस वृक्ष की शाखाओं को काटकर फल खाने चाहिए, तेजो लेश्या (शुद्ध भाव) वाला विचार करता है कि इस वृक्ष की उपशाखाओं को काटकर फल खाने चाहिए। पद्म लेश्या वाला (शुद्धतर भाव) विचार करता है कि फल तोडकर खाने चाहिए। शुक्ल लेश्या वाला (शुद्धतर भाव) विचार करता है कि पक कर नीचे गिरे हुए फल खाने चाहिए। इन भावों के अनुसार वे वचन भी कहते हैं। उनके मानसिक विचारों तथा वचनों से लेश्या के तारतम्य का ज्ञान हो जाता है।

कृष्ण लेश्या के कर्म व लक्षण :–कृष्ण लेश्या से संयुक्त जीव तीव्रक्रोधी, वैर को न छोडने वाला, गाली देने रूप स्वभाव से युक्त, दयाधर्म से रहित, दुष्ट और वश में नहीं आने वाला, यह कृष्ण लेश्या का क्षण है। **कृष्ण लेश्या का कर्म**–कृष्ण लेश्या से परिणत जीव निर्दय, झगडालू, रौद्र वैर की परम्परा से संयुक्त, चोर, असत्यभाषी, परदारा का अभिलाषी, मधु–मांस व मद्य में आसक्त, जिन–शासन के श्रवण में कान न देने वाला और असंयम में मेरु के समान स्थिर स्वभाव वाला है।

नील लेश्याः कर्म व लक्षण :–कार्य करने में मन्द, बुद्धि विहीन, विवेक से रहित, विषय लोलुपता, अभिमानी, मायाचारी, आलसी अभेद्य, निद्रा व धोखा देने में अधिक, धन–धान्य में तीव्र लालसा, ये नील लेश्या के लक्षण हैं।

कापोत लेश्या : कर्म व लक्षण :–रुष्ट होना, निन्दा करना, इस प्रकार से दोष लगाना, प्रचुर शोक व भय से संयुक्त होना, ईर्ष्या करना, पर का तिरस्कार करना, अपनी अनेक प्रकार प्रशंसा करने वालों से सन्तुष्ट होना, हानि–लाभ को नहीं जानना, युद्ध में मरण की प्रार्थना करना, स्तुति करने वालों को बहुत सा पारितोषिक देना, कर्त्तव्य अकर्त्तव्य के विवेक से हीन होना ये सब कापोत लेश्या के लक्षण हैं।

पीतलेश्या कर्म :–'तेजो लेश्या' जीव को कर्त्तव्य–अकर्त्तव्य तथा सेव्य असेव्य का जानकर, समस्त जीवों को समान समझने वाला, दया–दान में लवलीन और सरल करती है। तेजोलेश्या वाला जीव अहिंसक, मधु–मांस व मद्य का अरोवी, सत्यबुद्धि तथा चोरी व परदारा का त्यागी होता है। अथवा अपने कार्य–अकार्य सेव्य–असेव्य को समझने वाला हो, सब के विषय में समदर्शी हो, दया और दान में तत्पर हो, कोमल परिणामी हो, ये सब पीतलेश्या के कर्म अथवा चिन्ह हैं।

पद्य लेश्या वाले के लक्षण :–पद्म लेश्या में परिणाम जीव त्यागी, भद्र चोक्खा, ऋजुकर्मा, भारी अपराध का भी क्षमा करने वाला

तथा साधु पूजा व गुरु पूजा में तत्पर रहता है। दान देने वाला हो, भद्र परिणाम हो, जिसका उत्तम कार्य करने का स्वभाव हो, इष्ट तथा अनिष्ट उपद्रवों को सहन करने वाला हो, मुनि–गुरु आदि की पूजा में प्रीतियुक्त हो; ये सब पद्मलेश्या वालों के चिन्ह अथवा कर्म हैं।

शुक्ल लेश्या वाले के लक्षण :–शुक्ल लेश्या के होने पर जीव न पक्षपात करता है और न निदान करता है, वह सब जीवों में समान रहकर राग–द्वेष व स्नेह से रहित होता है। पक्षपात न करना, निदान को न बाँधना, सब जीवों में समदर्शी होना, इष्ट से राग तथा अनिष्ट से द्वेष न करना, स्त्री–पुत्र–मित्र आदि में मोह रहित होना, ये सब शुक्ल लेश्या वाले के कर्म अथवा चिन्ह हैं।

महान् आध्यात्मिक पुरुष यथा तीर्थंकर, बुद्ध से लेकर साधु–संत ऐसी ही महान् आदर्शमय वैश्वीकरण की परिकल्पना से लेकर भावना भाते हैं, क्रिया–कलाप, प्रवचन व्यवहार आदि के माध्यम से उस के प्रचार–प्रसार–स्थापना करने के लिए प्रयत्न करते हैं। भले प्रायोगिक रूप से सम्पूर्ण विश्व में सम्पूर्ण जीव ऐसे भाव एवं व्यवहार को स्वीकार नहीं करते हैं तथापि महापुरुष तो ऐसे ही भावात्मक विश्व में जीते हैं, इसलिए तो भावात्मक रूप से उसका फल प्राप्त कर लेते हैं। क्योंकि जो जैसे होता है उसे वैसा ही प्राप्त होता है केवल चाहने मात्र से प्राप्त नहीं होता; नहीं चाहने वाले या अयोग्य को प्राप्त होगा ही कैसे?

इतिहास स्वयं को दोहरता है, आवश्यकता आविष्कार की जननी, आविष्कार आवश्यता का जनक है, गच्छतीति जगत् अर्थात् जो गतिशील है वह जगत् है के अनुसार वैश्वीकरण की यथार्थता विविध काल में विविध दृष्टि से सम्भव हुआ है और होगा भी । पूर्व में भी भोगभूमिज आर्य, सर्वार्थ सिद्धि के देव, सिद्ध जीव आदि सम्बन्धी वैश्वीकरण का वर्णन किया गया है। अभी भी फ्री पीपुल मूवमेंट के समर्थकों का मानना है कि कुशल व अकुशल कामगारों में भेद न करते हुए सभी के लिए राष्ट्रों की सीमायें खोल देनी चाहिए। इससे अमीर और गरीब दोनों देशों को लाभ होगा। इसी प्रकार पूर्व में वर्णित संचार क्रान्ति से लेकर पारिस्थितिकी वैश्वीकरण के कारण यथार्थ वैश्वीकरण की परिकल्पना, कार्यकलाप लाभ–अलाभ के बारे में ज्ञान एवं उपयोगिता बढती जा रही है। मेरी (आ. कनकनन्दी) पवित्र, उदात्त भावना है कि आध्यात्मिक वैश्वीकरण की स्थापना विश्व में हो जिससे संकीर्णता, भेद–भाव, ईर्ष्या–द्वेष, आक्रमण–प्रतिआक्रमण, आंतकवाद, युद्ध, हत्या, विध्वंस, शोषण–शोषित, धनी–गरीब, मालिक–मजदुर आदि विषमता से जो धन, जन, समय, शक्ति, ज्ञान–विज्ञान, साधन, उपकरण, प्रशिक्षण, शिक्षा, संस्कृति, सभ्यता, प्रकृति का दुरुपयोग, विध्वंस होता है वह न हो और इन सब का सदुपयोग, सुरक्षा समृद्धि, सुख–शान्ति, आध्यात्मिक विकास आदि के लिए हो जिस से विश्व के प्रत्येक जीव अक्षय–अनन्त आध्यात्मिक वैभव, सुख–शान्ति को प्राप्त करें।

मेरी उपर्युक्त भावना, परिकल्पना भले वास्तविक सत्य–तथ्य रूप में पूर्णतः कार्यान्वित होना असंभव हो या केवल आदर्श हो तथापि ऐसी ही भावना, परिकल्पना, योजना हर महान् पुरुषों को करनी चाहिए। क्योंकि जो ऐसी भावना से ओत–प्रोत होते हैं तो कम से कम उनकी भावना पवित्र होगी, वे पाप नहीं करेगें जिससे उनको सुख शान्ति मिलेगी। इस का प्रभाव भी धीरे–धीरे दूसरों के ऊपर पडेगा। एक दीपक के प्रज्ज्वलित होने पर उसके सम्पर्क से लाखों–करोडों दीपक प्रज्ज्वलित हो सकते हैं और अंधकार दूर होता है। मानो कि अन्य दीपक भी प्रज्ज्वलित नहीं हुए तो भी उस के कारण तो कुछ अन्धकार दूर होता ही है। तीर्थंकर, बुद्ध आदि के कारण धर्म में जो पशु–मनुष्य आदि की हिंसा/हत्या/बलि होती थी उसका निषेध हुआ, उसका प्रचार–प्रचार हुआ और लाखों–करोडों लोग तब से लेकर अभी तक तथा आगे भी उस हिंसा से निवृत्त हुए हैं और होगें, दास प्रथा के कारण प्राचीन काल से मनुष्य के ही दास मनुष्य होते थे और उनके साथ जघन्य, क्रूर कठोर, अमानवीय व्यवहार होता था वह महामना अमेरिका के राष्ट्रपति जो स्वयं पूर्व में एक गरीब अश्वेत थे, द्वारा कानूनतः दूर हुआ। इससे हजारों वर्षों से जो हजारों–लाखों व्यक्ति पीडित होते थे उससे मुक्त हुए। जो कार्य बडे–बडे राजा–महाराजा से लेकर धार्मिक लोगों से नहीं हो पाये उस एक गरीब अश्वेत लकडहारे का लडका कर पाया जो कि राजनैतिक चुनाव में 18 बार हारा था।

इस प्रथा को दूर करने का प्रयास ईसा पूर्व से ही रोम में एक स्पाटिकस् नामक ग्लोडियटर (दास) के द्वारा प्रारम्भ हुआ तो भारत में तीर्थंकरों द्वारा प्रारम्भ हुआथा। रोम में राजा लोग दासों को परस्पर या हिंस्र पशु के साथ लढवा कर मनोरंजन करते थे और उसके लिए हार–जीत का सट्टा लगाते थे। वह लडाई तब तक होती जब तक उनमें से कोई एक दास की मृत्यु नहीं हो जाती थी। इस लडाई के कारण अधिकांश दास 20 से 40 वर्षों की आयु में मारे जाते थे। रोमन वाले स्वयं को श्रेष्ठ सिद्ध करने के लिए युद्ध, राज्य–विस्तार, दासों की लडाई करते थे। दासों की लडाई के लिए 50,000 तक दर्शक की व्यवस्था वाला थियेटर भवन बनाते थे। स्पाटिकस ने अपने साथी दासों के सहयोग से दास मुक्ति के लिए 2 वर्ष तक संघर्ष किया था। हजारों व्यक्तिओं के हजारों वर्षों के प्रयास, संघर्ष के कारण अन्ततोगत्वा लिंकन द्वारा कानूनतः इस प्रथा को बन्द कर दिया गया। इस प्रकार विश्व मानव के लिए जघन्य अभिशाप स्वरूप दासप्रथा का पृथ्वीस्तर पर कानूनतः अस्त हुआ। लाखों–करोडों वर्षों से पृथ्वी पर शासन करने वाला राजशाही शासन, स्त्रियों के वोट देने का अनधिकार भी सैकडों वर्षों की राजनैतिक जागृति–क्रान्ति के कारण लोप हुआ और लोप होता जा रहा है। इसी प्रकार वैज्ञानिक विकास, पर्यावरणीय सुरक्षा, पशु क्रूरता निवारण, पशु कल्याण भावना, पारिस्थितिकी सन्तुलन–सुरक्षा आदि के कारण पशु–पक्षी–वनस्पति आदि की सुरक्षा, समृद्धि के कार्यक्रम

भी हो रहे हैं। पहले तो एक ही देश के राजा–राजा परस्पर आक्रमण, युद्ध, लूट, विध्वंस, हत्या करके दूसरों के राज्य पर शासन करते थे, अभी प्रायः वैसा नहीं होता है, अपरंच अनेक देश के राष्ट्राध्यक्ष तथा यहाँ तक कि शत्रुता रखने वाले देश के राष्ट्राध्यक्ष भी एक साथ मेल–मिलाप से चर्चा के माध्यम से समस्याओं के समाधान के उपाय खोजते हैं युद्ध टालते हैं, संयुक्त राष्ट्र संघ से लेकर अनेक राष्ट्र मिलकर शान्ति, विकास, व्यापार, आदान–प्रदान, सहयोग, संन्धि, निरस्त्रीकरण, गरीबी दूर, रोग निवारण आदि के बारे में विचार–विमर्श करके परस्पर के सहयोग से राष्ट्र से लेकर पृथ्वी भर में अच्छे–अच्छे कार्य कर रहे हैं। यह सब वैश्वीकरण के विभिन्न रूप हैं।

एक सामान्य नर्स नाइटेंगिल ने यदि पृथ्वीभर में सम्पूर्ण संकीर्ण सीमा को लांघ कर घायल–रोगी की सेवा का वैश्वीकरण का कार्य (रेडक्रास–एम्बुलेन्स) कर सकती है, मदर टेरसा पृथ्वी भर में रोगी–असहाय की सेवा का वैश्वीकरण कर सकती है, लिंकन पृथ्वी भर के दासों को मजदूरों को अधिकार दे सकते हैं तो पृथ्वी भर के विभिन्न क्षेत्र के लाखों–करोडों उदारमना व्यक्ति मिलकर नैतिकमय समतापूर्ण वैश्वीकरण क्यों नहीं कर सकते हैं? अवश्य कर सकते हैं। समानता के सिद्धान्त को ही श्रेय है कि सभी नागरिक–नागरिक होने के नाते से ही समान माने जाते हैं। आध्यात्मिक समानता की यह एक राजनीति परिणत है। जैन दर्शन

के आधार पर तो सभी के प्रति समता पूर्वक मैत्रीभाव की कामना की गई है। बल से किसी प्राणी को अपने अधीन करने का निषेध किया है–

सव्वे पाणा सव्वे भूया सच्चे सत्ता न हंतव्वा, न उज्जावेयव्वा, परिछेतव्वा, न परियावेयव्वा, न उद्देवेयव्वा। ऐसे धम्मे सुध्दे णिइए मासए।

सर्व प्राणी, भूत, जीव और सत्व इनका घात मत करो, बलात् किसी को अपने अधीन मत करो, प्रहार मत करो, शारीरिक मानसिक पीडा मत उपजाओ, क्लान्त मत करो, उपद्रव मत करो।

आत्मवत्सर्वभूतेषु, सुखदुःखे प्रियाप्रिये।
चिन्तयन्नात्मोऽनिष्टा हिंसामन्यस्य नाचरेत्।।

जिस प्रकार स्वयं को सुख प्रिय है और दुःख अप्रिय है, ठीक वैसा ही दूसरों को सुख प्रिय और दुःख अप्रिय है यह समझ कर कि स्वयं के लिए अनिष्ट है ऐसी हिंसा अन्य के लिए नहीं करें अर्थात् जिस प्रकार स्वयं दुःख, अपमान, गुलामी, शोषण, दीनता–हीनता, विनाश, मृत्यु, रोग, तनाव आदि नहीं चाहते हो वैसा ही दूसरे सम्पूर्ण प्राणी नहीं चाहते हैं। इसलिए दूसरों के लिए भी ऐसा व्यवहार मत करो। सार–संक्षेप रूप में अहिंसा, सत्य, अचौर्य ब्रह्मचर्य, अपरिग्रह, अनेकान्त, स्याद्वाद, क्षमा, मृदुता, सरलता, निर्लोभता, सहजता, पवित्रता, उदारता, सहिष्णुता, संयम, तप,

त्याग, समता आदि गुणों विश्व के प्रत्येक जीव में समग्रता से जाग्रत होना ही यथार्थ से वैश्वीकरण है, ग्लोबलाइजेशन है, वसुधैव कुटुम्बकम् है। उपर्युक्त गुण ही प्रत्येक जीव के स्व–धर्म–वैभव, सत्ता, सम्पत्ति, शक्ति, गुण, स्वभाव है। भले इन गुणों की अभिव्यक्ति प्रत्येक जीव में समान नहीं होती है परन्तु प्रत्येक जीव में शुप्त–गुप्त रूप में शक्ति रूप में अवश्य होते हैं जैसा कि बीज में वृक्ष। जिस प्रकार बीज योग्य जल, वायु, मृदा, सूर्य किरण, सुरक्षा आदि को प्राप्त करके अंकुरित होकर वृक्ष बनता है वैसा ही जीव भी अभ्यास, साधना, आराधना, ध्यान, अध्ययन, उपासना, प्रार्थना, संयम, धैर्य, सत्यनिष्टा, दया, करुणा, प्रेम, सहयोग, त्याग, पवित्र ध्येय आदि के माध्यम से स्व निहित शक्तिओं को विकसित करते–करते पूर्णता को प्राप्त करता है।

सर्वधर्म समता भाव एवं विश्व शान्ति

बिंदुओं का समूह ही सिंधु है। यदि प्रत्येक बिन्दु का स्वाद लवणाक्त है तो उससे जो सिन्धु बनेगा उस सिन्धु का भी स्वाद लवणाक्त ही होगा। यदि प्रत्येक व्यक्ति शान्त,सभ्य, अच्छा होगा तो उससे जो समाज बनेगा वह भी शान्त, सभ्य, अच्छा ही होगा। जिस प्रकार शुद्ध सुवर्ण से बनने वाले अलंकार भी शुद्ध ही होंगे। समाज अच्छा होगा तो राष्ट्र भी अच्छा होगा। प्रत्येक राष्ट्र भी अच्छा होगा। प्रत्येक राष्ट्र अच्छा होगा तो भूमण्डल तथा विश्व भी अच्छा होगा। अतः विश्व शांति के पहले व्यक्ति–शांति, समाज–शांति के पहले व्यक्ति–शांति, समाज–शांति, राष्ट्र की शांति नितान्त आवश्यक है। अतएव विश्व शांति का शुभारंभ व्यक्ति शांति से तथा विश्व–निर्माण का मंगलाचरण व्यक्ति निर्माण से करना चाहिए।

जब तक सिंधु में बिंदु रहती हैं तब तक बिंदु प्रखर सूर्य किरण से भी शीघ्र से सूखती नहीं है परंतु वही बिंदु जब सिंधु से अलग हो जाती है तब मंद सूर्य–किरण से भी शीघ्रता से सूख जाती है। इसलिये विश्व की शांति का अर्थ है विश्व के प्रत्येक जीव की शांति। अतः आत्म शांतिकामा को भी विश्व की शांति की कामना करनी चाहिए तथैव च विश्व शांतिकामा को भी आत्म शांति का कार्य

करना चाहिए। आत्मशांति तथा विश्वशांति परस्पर अनुपूरक परिपूरक है। अतएव आत्म–शांति के लिए महान् व्यक्ति विश्व शांति की भावना भाते हैं। यथा–

प्राणा यथात्मनोऽभीश्टाः भूतानामपि ते तथा।
आत्मौपम्येन मन्तव्यं बुद्धिमद्भिमहात्माभिः।।

महाभारत (अनुशासन पर्व 275/19)

जैसे मानव को अपने प्राण प्यारे हैं, उसी प्रकार सभी प्राणियों को अपने–अपने प्राण प्यारे हैं। इसलिए जो लोग बुद्धिमान और पुण्यशाली हैं, उन्हें चाहिए कि वे सभी प्राणियों को अपने समान समझें।

यथा अहं तथा एते यथा एते तथा अहम्।
अत्तानं उपमं कत्वा न हनेय्य न घातये।।

सुत्त निपात 3–3–27 बुद्ध धर्म

जैसे मैं हूँ वैसे ये हैं, तथा जैसे ये हैं वैसा मैं हूँ– इस प्रकार आत्म सदृश्य मानकर न किसी का घात करें, न करावें।

सव्वे तसन्ति दण्डस्य, सव्वेसिं जीवितं पियं।
अत्तानं उपमं कत्वा न हनेय्य न घातये।।10/1

सब लोग दण्ड से डरते हैं, मृत्यु से भय खाते हैं। दूसरों को अपनी तरह जानकर न तो किसी को मारे और न किसी को मारने की प्रेरणा करे।

यो न हन्ति न घातेति, न जिनति न जापते।
मित्तं सो सव्वभूतेसु वेरं तस्स न केनचीति।। इतिबुत्तक

जो न स्वयं किसी का घात करता है, न दूसरों से करवाता है, न स्वयं किसी को जीतता है, न दूसरों को जितवाता है, वह सर्व प्राणियों का मित्र होता है, उसका किसी के साथ वैर नहीं होता।

आत्मानः प्रतिकूलानि परेशां न समाचरेत्। मनुस्मृति

जो कार्य तुम्हें पसंद नहीं है, उसे दूसरों के लिए कभी मत करो। उपनिषद् में भी किसी जीव के प्रति घृणा न करने प्रेम करने के लिए कहा गया है–

यस्तु सर्वाणि भूतानि,आत्मन्येवानुपश्यति।
सर्वभूतेषु चात्मानं, ततो न विजुगुप्सते।।

जो अंतर्निरीक्षण के द्वारा सब भूतों (प्राणियों)को अपनी आत्मा में ही देखता है, और अपनी आत्मा को सब भूतों में, वह फिर किसी से घृणा नहीं करता है।

(1)वैदिक धर्म एवं विश्व शान्ति

जितात्मनः प्रशान्तस्य परमात्मा समहितः।
शीतोष्णसुखदुःखेषु तथा मानापमानयोः।।7

जिसने अपने मन को जीता है और सम्पूर्ण रूप से शांत हो गया है उसका आत्मा सर्दी–गर्मी, दुःख–सुख, मानापमान में समान रहता है।

ज्ञानाविज्ञानतृप्तात्मा कूटस्थो विजितेन्द्रियः।
युक्त इत्युच्यते योगी समलोष्टाश्मकाञ्चनः।।8

जो ज्ञान और अनुभव से तृप्त हो गया है, जो अविचल है, जिसने इंद्रियों को जीत लिया है और जिसे मिट्टी, पत्थर और सोना समान लगते हैं, ऐसा ईश्वर परायण मनुष्य योगी कहलाता है।

सुहृन्मित्रार्युदासीनमध्यस्थद्वेशबन्धुषु।
साधुष्वापि च पापेषु समबुद्धिर्विशिष्यते।।9

हितेच्छु, मित्र, शत्रु, निपक्षपाती, दोनों का भला चाहने वाला द्वेषी, बंधु, साधु तथा पापी इन सब में जो समान भाव रखता है वह श्रेष्ठ है।

योगी युञ्जीत सततमात्मानं रहसि स्थितः।
एकाकी यतचित्तात्मा निराशीर प्ररग्रहः।। 10

चित्त स्थिर करके, वासना और संग्रह का त्याग करके, अकेला एकांत में रहकर योगी निरंतर आत्मा को परमात्मा के साथ जोडे।

युक्ताहारविहारस्य युक्तचेष्टस्य कर्मसु।
युक्तस्वप्नावबोधस्य योगो भवति दुःखहा।।17

जो मनुष्य आहार–विहार में, दूसरे कर्मो में, सोने–जागने में परिमित रहता है, उसका योग दुःख भंजन हो जाता है।

सर्वभूस्तथामात्मनं सर्वभूता न चात्मनि।
इक्षते योगयुक्तात्मा सर्वत्र समदर्शनः।।29

सर्वत्र समभाव रखने वाला योगी अपने को सब भूतों में और सब भूतों को अपने में देखता है।

समः भात्रौ च मित्रे च तथा मानापमानयोः।
शीतोष्णसुख दुखेषु समः संग विवर्जितः।।18
तुल्यनिन्दास्तुतिमौनी संतुष्टो येन केनचित्।
अनिकेतः स्थिरमतिभक्तिमान्मे प्रियो नरः।।19

शत्रु–मित्र, मानापमान, शीतोष्ण, सुख–दुःख, इन सबमें जो समतावान् है, जिसने आसक्ति छोड दी, जो निन्दा और स्तुति में समान भाव से वर्तता है और मौन धारण करता है, चाहे जो मिले उसी से जिसे संतोष है, जिसका कोई अपना निजी स्थान नहीं है, जो स्थिर चित्त वाला है ऐसा मुनिभक्त मुझे प्रिय है।

संगच्छध्वं संवदध्वं सं वो मनांसि जानताम्।
देवा भागं यथा पूर्वो संजनाना उपासते।।
6/64/1 अथर्व वेद

तुम सब लोग एक मन हो जाओ, सब लोग एक ही विचार के बन जाओ, क्योंकि प्राचीन काल में एक मन होने के कारण ही देवताओं ने बलि पाई है।

सह नाववतु, सह नौ भुनुक्तु, सह वीर्य करवावहै।
तेजस्विनावधीतमस्तु, मा विद्विषावहै।।
अरण्यक तै. आ. 8/2

हम दोनों (गुरु, शिष्य) का साथ–साथ रक्षण हो, हम

दोनों साथ–साथ भोजन करें, हम दोनों साथ–साथ समाज के उत्थान के लिए पुरुषार्थ करें, हमारा अध्ययन तेजस्वी हो, परस्पर द्वेष न करें।

(2)बौद्ध धर्म एवं विश्व शान्ति

सुखो बुद्धानं उप्पादो सुखा सद्धम्मदेसना।
सुखा संघस्स सामग्गी समग्गान तपो सुखो।।16

सुख दायक है बुद्धों का जन्म, सुखदायक है सद्धर्म का उपदेश, संघ में एकता सुखदायक है और सुखदायक है एकतायुक्त तप करना।

सुसुखं वत! जीवाम वेरिनेसु अवेरिनो।
वेरिनेसु मनुस्सेसु विहराम अवेरिनो।।1 (सुख वग्गो)

वैरियों में अवैरी हो; अहो! हम सुख पूर्वक जीवन बिता रहे हैं, वैरी–मनुष्यों के मध्य में अवैरी होकर हम विहार करते हैं।

जयं वेरं पसवति दुक्खं सेति पराजितो।
उपसन्तो सुखं सेति हित्वा जयपराजयं।।5

विजय वैर को उत्पन्न करती है, पराजित पुरुष दुःख की नींद सोता है, किन्तु रागादि दोष जिसके शांत हैं, वह पुरुष जय–पराजय को छोड सुख की नींद सोता है।

नत्थि रागसमो अग्गि नत्थि दोससमो कलि।
नत्थि खन्धसमा दुक्खा नत्थि सन्तिपरं सुखं।।6

राग के समान अग्नि नहीं है, द्वेष के समान मल नहीं है,

पंच स्कंध के समान दुःख नहीं, और निर्वाण से बढकर सुख नहीं है।

आरोग्यपरमा लाभा सन्तुट्ठी परमं धनम्।
विस्सासपरमा ञाती निब्बानं परमं सुखं।।8

निरोग होना परम लाभ है, संतोष परम धन है, विश्वास सबसे बडा बंधु है, निर्वाण सबसे बडा सुख है।

सीलदस्सनसम्पन्नं धम्मट्ठं सच्चवादिनं।
अत्तनो कम्मकुब्बानं तं जनो कुरुते पियं।।9

जो शील और दर्शन (सम्यग्दृष्टि) से संपन्न, धर्म में स्थित, सत्यवादी और अपने कामों को करने वाला है, उसे (पुरुष) लोग प्रेम करते हैं।

अक्कोधेन जिने कोधं असाधुना जिने।
जिने कदरियं दानेन सच्चेन अलिकवादिनं।।3 (कोधवग्गो)

अक्रोध से क्रोध को जीते, असाधु को साधुता (भलाई) से जीते, कंजूस को दान से जीते, झूठ बोलने वाले को सत्य से जीते।

सच्चं भणे न कुज्झेय्य दज्जाप्पस्मिम्पि याचितो।
एतेहि तीहि ठानेहि गच्छे देवान सन्तिके।।4

सच बोले, क्रोध न करें, थोडा भी माँगने पर दें, इन तीनों से पुरुष देवताओं के पास जाता है।

अहिंसका ये मनुयो निच्चं कायेन संवुता।
ये यन्ति अच्चुतं ठानं यत्थ गन्त्वा न सोचरे।।5

जो मनुष्य हिंसा से रहित, नित्य अपने शरीर में संयत है, वे उस अच्युत पद को प्राप्त करते हैं जिसे प्राप्त कर वे शोक नहीं करते हैं।

अक्कोच्छि मं अवधि मं अजिन मं अहासि मं ।
ये ते उपनय्हन्ति वेरं तेसं न सम्मति।।3 यमक वग्गो

उसने मुझे डाँटा, उसने मुझे मारा, उसने मुझे जीत लिया, उसने मेरा लूट लिया– जो ऐसा मन में बनाये रखते हैं, उनका वैर शांत ही नहीं होता है।

न हि वेरेन वेरानि सम्मन्तीध कुदाचनं।
अवेरेन च सम्मन्ति एस धम्मो सनन्तनो।।5

इस संसार से वैर कभी शान्त नहीं होते, अवैर (अमैत्री) से ही शान्त होते हैं–यह सदा का नियम है।

परे च न विजानन्ति मयमेत्थ यमामसे।
ये च तत्थ विजानन्ति ततो सम्मन्ति मेधगा।।6

अनाडी लोग इसका ख्याल नहीं करते कि हम इस संसार में नहीं रहेंगे, जो इसका ख्याल करते हैं उनके सारे कलह शान्त हो जाते हैं।

इध सोचति पेच्च सोचति पापकारी उभयत्थ सोचति।
सो सोचति सो विहञ्जति दिस्वा कम्मकिलिट्ठमत्तनो।।15

इस लोक में शोक करता है और परलोक में जाकर भी, पापी दोनों जगह शोक करता है। वह अपने मैल कर्मों को देखकर शोक करता है, पीड़ित होता है।

इध मोदति पेच्च मोदति कतपुञ्जो उभयत्थ मोदति।
सो मोदति सो पमोदति दिस्वा कम्मविसुद्धिमत्तनो।। 16

इस लोक में मोद करता है और पर लोक में जाकर भी। पुण्यात्मा दोनों जगह मोद करता है वह अपने कर्मों की विशुद्धि को देखकर मोद करता है, प्रमोद करता है।

(3)यहूदी धर्म एवं विश्व–शान्ति

जिसके काम निर्दोष हैं, हृदय शुद्ध है, जिन्होंने अपने मन को व्यर्थ बातों की ओर नहीं लगाया, और न कपट से शपथ खाई है, वह यहोवा की ओर से आशीष पायेगा, और अपने उद्धार करने वाले परम ईश्वर की ओर से धर्मात्मा ठहरेगा।

अपनी जीभ को बुराई से रोक रख, मुँह अपने की चौकसी कर कि उससे छल की कोई बात न निकले। बुराइयों को छोड और भलाई कर, मेल को ढूँढ और उसी का पीछा कर। यहाँ बाकी की आँखें धर्म करने वालों पर लगी हैं।

ईश्वर प्रेमी है, ईश्वर करुणामयी है, ईश्वर सत्य कर्म से, प्रेम से, करुणा से सब के साथ स्नेह भरा व्यवहार करने से प्रसन्न होता है। ईश्वर से प्रेम करना है तो मनुष्य से प्रेम करो, अपने भाईयों से प्रेम होना चाहिए पूरे मन से, वचन से और कर्म से।

अन्याय न करो। शोषण न करो। ब्याज न लो मुनाफा न लो। किसी को सताओ मत। जमीन की सेवा करो। गुलामों को मुक्त करो। सदाचार का पालन करो। श्रम करो। लालच मत करो। यही

तो है यहोवा का आदेश।

प्रेम, करुणा, सत्य, अस्तेय, ब्रह्मचर्य, श्रमनिष्ठा, भूमि की सेवा, अनाथों, पीड़ित और विधवाओं की सेवा, सदाचार और पवित्रता यही तो है यहोवा को प्रसन्न करने के उपाय।

(4) पारसी धर्म एवं विश्व शान्ति

मनुष्य के 10 कर्तव्य

1) किसी की निंदा मत करो। 2) मन में लोभ–लालच का भाव मत रखो। 3) किसी पर क्रोध मत करो। 4) किसी प्रकार की चिन्ता न रखो। 5) भोग विलास में मत डूबो। 6) दूसरों से अनुचित डाह मत करो। 7) आलसीपन की आदत मत डालो। 8)उद्यमी बनो। 9) दूसरों की सम्पत्ति न ऐंठो, न हडपो। 10) पराई स्त्रियों से दूर रहो। शत्रु को मित्र बनाओ।

मनुष्य के तीन करणीय कर्तव्यः–

1) जो शत्रु है, उसे मित्र बनाओ।(बनाना) 2) जो दुराचारी है, उसे सदाचारी बनाना। 3) जो अशिक्षित है, उसे शिक्षित बनाना। पशुओं पर दया करो।

मनुष्यों का कर्तव्य है कि वे पशुओं को प्रसन्न रखें। दुष्ट और आलसी लोगों से उनकी रक्षा करें। उन्हें अच्छी और गरम जगह (ऋतु अनुकूल) पर बाँधे। उनके लिए घास , भूसा, खली का पूरा प्रबंध करें। छोटे बछडों को उनकी माताओं से दूर न करें।

(5) ईसाई धर्म एवं विश्व शान्ति

ईसा मसीह ने भी उपदेश दिया था–अपने पडौसी से वैसा ही प्यार करो जैसा, स्वयं से करते हो। मानव की सेवा ही परमात्मा की सेवा है। अन्तिम न्याय के दिन की कथा का दृष्टान्त बहुत ही बेबाक है, उन सभी लोगों को स्वर्ग भेज दिया गया जिन्होंने अपने साथी प्राणियों की सहायता की थी यद्यपि वह ईसा को जानते तक नहीं थे।

बाइबिल में कहा गया है "जब तुम किसी पर दया करते हो तो किसी को भी मत बताओ, उसे राज ही रखों, तुम्हारे बाँये हाथ को भी पता नहीं होना चाहिए कि दाँया हाथ क्या कर रहा है। सावधान रहो, भलाई के काम–प्रशंसा प्राप्त करने के लिए सार्वजनिक रूप से मत करो क्योंकि स्वर्ग में स्थित पिता से प्राप्त होने वाले फल से वंचित हो जाओगे।

क्योंकि आध्यात्मिक संसार भौतिक संसार का विस्तार व उदात्तीकरण है। अतः आध्यात्मिकता एक अच्छे व बुद्धिमत्ता पूर्ण विधि से बिताये जीवन का सहज परिणाम है– नैतिकता या सदाचरण रूपी वृक्ष का फल व फूल है। (विज्ञान का सार्वभौम धर्म)

ईसा मसीह की भी यही शिक्षा है "मैं विधान या पैगम्बरों का नाश करने नहीं आया हूँ अपितु उन्हें पूर्णत्व प्रदान करने ही आया हूँ।" उनके अन्य सिद्धान्त, जिनमें उन्होंने सदाचार, सहजीवियों की प्रेमपूर्ण सेवा और विशेष रूप से यह घोषणा कि वह सब जो

अपने सहजीवियों की सहायता करते हैं, उन्हें स्वर्ग में भेजा जाएगा, चाहे वह किसी भी पंथ, जाति अथवा वर्ण धर्म के हो, मैं सार्वभौमिक धर्म के बीच विद्यमान हूँ।

6) ताओ धर्म एवं विश्व शान्ति

प्रकृति का सहज नियम है–प्रेम। सारे दुःखों का मूल है– प्रेम का अभाव। ताओ धर्म में प्रेम के सहज मार्ग को अपनाने की बात कही गयी है। नम्रता और प्रेम को ज्ञान और आनंद का मार्ग बताया गया है। जो अपने साथ प्रेम करे, उसी से तो प्रेम करना चाहिए, पर यहाँ तो उस से भी प्रेम करना है, जो अपने से प्रेम नहीं करता । अच्छे के साथ ही नहीं, बुरे के साथ भी अच्छा बर्ताव करना है। तभी तो बुरा भी अच्छा बन सकेगा।

ताओ धर्म में युद्ध को गलत माना है। खून बहाने की, रक्तपात करने की निन्दा की गयी है। शस्त्रों का विरोध किया है। सेना का विरोध किया गया है। कहा है कि युद्ध सारे बुराईयों की जड़ है। सेना दुःख और दुर्भाग्य की निशानी है। पह जहाँ से होकर एक बार गुजर जाती है, वहाँ तबाही छोड जाती है। जो आदमी खून देखकर खुश होता है, वह भी भला कोई आदमी है?

मैं तीन अनमोल चीजों से चिपका रहता हूँ, पहली चीज है मार्दव। दूसरी चीज है, परिमितता। तीसरी चीज है विनयशीलता। मार्दव से मैं धीर रह सकता हूँ। परमितता से मैं उदार रह सकता हूँ। विनय से जहाज की तरह बहुत सेवा कर सकता हूँ।

7) कांगफ्यूश धर्म एवं विश्व शान्ति

1)**प्रेम** : सभी गुणों का मूल है। 2) **न्याय** : सभी को उचित न्याय मिलना आवश्यक है। सब अपने कर्तव्यों का ठीक से पालन करें, तभी अपने अधिकारों का उपयोग कर सकेंगे। 3) **नम्रता** : कर्तव्य और अधिकार तभी मिल सकेंगे, जब हृदय में नम्रता होगी। 4) **विवेक** : भला क्या है, बुरा क्या है– इस बात का सदा विवेक करना आवश्यक है। जो अच्छा हो, उसे ग्रहण करो जो बुरा हो, उसे छोड दो। 5) **ईमानदारी** : सच्चाई और ईमानदारी सभी सद्गुणों की आधारशिला है। वह व्यक्तिगत जीवन में भी जरुरी है, सामाजिक जीवन में भी।

8) इस्लाम धर्म एवं विश्व शान्ति

इस्लाम धर्म के पैगम्बर हजरत मुहम्मद मानवीय जीवन को इतना अधिक सम्मान करते थे कि उनमें अपने पराये का अन्तर भी न था। एक बार एक यहुदी की अर्थी उनके सामने से जा रही थी, तो वह उनके सम्मान में खडे हो गये। उनके एक साथी ने कहा यह तो मुसलमान नहीं था। उन्होंने फर्माया क्या वह मनुष्य न था, अर्थात् मानव का आदर आवश्यक है। वह मुसलमान हो या न हो।

इस्लाम और शाकाहार

ईस्लाम ने मांस, खाने को ही नहीं हिंसा करने को भी अच्छा नहीं माना है। इसके सबूत में हज करने के बारे में जो

विधान है, वह खास तौर से ध्यान देने योग्य है। जब कोई व्यक्ति हज करने जाता है तो अहराम (सिर पर बाँधने का सफेद कपडा) बाँध कर जाता है और जब तक हज नहीं हो जाती, वह उसे बाँधे रहता है। अहराम की स्थिति में हज करने वालों को पूर्ण ब्रह्मचर्य का पालन करना होता है। इस स्थिति में वह न तो किसी पशु–पक्षी को मार सकता है, न किसी जीवधारी पर ढेला चला सकता है और न ही घास नोंच सकता है। यहाँ तक कि वह किसी हरे भरे वृक्ष की टहनी/पत्ती तक भी नहीं तोड सकता। इस प्रकार हज करते समय अहिंसा के परिपूर्ण पालन का स्पष्ट विधान है।

विश्व–शान्ति के विविध आयाम

जैनधर्म के प्रत्येक तीर्थंकर जो कि स्वयं सार्वभौम चक्रवर्ती, राजा, महाराजा या राजकुमार होते हैं, वे सभी स्व–शान्ति के लिए एवं विश्व शान्ति के लिए समस्त राजसत्ता को त्याग कर उपर्युक्त गुणों को स्वयं में प्रकट करते हैं। यदि केवल राजसत्ता से, वैभव से, सैनिक शक्ति से, शारीरिक या अस्त्र–शस्त्र की शक्ति से शान्ति की उपलब्धि होती तो वे उपर्युक्त शक्तियों को त्याग करके आत्मशक्ति की आराधना क्यों करते? इसी प्रकार गौतम बुद्ध भी इकलौते राजकुमार थे तथापि वे शान्ति की खोज के लिए समस्त वैभव को त्याग करके साधु बन गये। इसी प्रकार प्रायः प्राचीन से लेकर आधुनिक समय तक, देश से लेकर विदेश तक समस्त महापुरुष शान्ति के लिए आध्यात्मिक, नैतिक एवं मानवीय गुणों को

ही परिमार्जित, परिष्कृत, परिवर्धित करते हैं। पहले तीर्थंकर, तथागत बुद्ध, पैगम्बर मोहम्मद, ईसा मसीह, साधु–संत आदि शान्ति के लिए कार्य करते रहे। आधुनिक युग में कुछ साधु–संत, समाज सुधारक, राजनीतिज्ञ, वैज्ञानिक, साहित्यकार, लेखक आदि ने ऐसे कार्य के लिए महत्वपूर्ण योगदान दिया है। यथा– राष्ट्रपति अब्राहम लिंकन, राजाराम मोहनराय, महात्मा फूले, दयानन्द सरस्वती, विवेकानन्द, माहात्मा गाँधी, टॉलस्टॉय, रस्किन, जॉर्ज बर्नाड शॉ, वैज्ञानिक आइन्स्टीन, ईश्वरचन्द विद्यासागर, बंकिमचन्द्र चट्टोपाध्याय, उत्कल मणी गोपबंधुदास, महर्षि अरविन्द, मदर टेरेसा, फ्लोरेन्स नाईटेंगल आदि ने इस क्षेत्र में महत्त्वपूर्ण कार्य किया है।

उपर्युक्त वर्णन शान्ति के लिए कार्य करने वाले व्यक्ति विशेष का है। समिष्टि रूप से भी इस क्षेत्र में भी कार्य हुआ है। यथा– संयुक्त राष्ट्र संघ, रेडक्रॉस, एम्बुलेंस, लायन्स क्लब, रोटरी क्लब, एन. सी. सी., स्काउट आदि ने अपने–अपने क्षेत्र में महत्त्वपूर्ण कार्य किये हैं और अभी भी कर रहे हैं। प्राचीन पुराण, इतिहास साक्षी है कि प्राचीन काल में थोडी–थोडी बात को लेकर एक राजा दूसरे राजा के साथ, एक राष्ट्र दूसरे राष्ट्र के साथ युद्ध करने में उतारु हो जाते थे। वर्तमान काल में कुछ उदारपूर्ण विचारधारा के कारण पहले के समान अभी समस्यायें नहीं हैं। अभी कोई राष्ट्र में किसी कार्य को लेकर किसी प्रकार की समस्या उत्पन्न होने पर वे परस्पर विचार–विमर्श करके समाधान का रास्ता ढूँढते हैं। यदि परस्पर विचार विमर्श से कोई निर्णय पर नहीं पहुँचते हैं तो उस विषय को

अन्तर्राष्ट्रीय स्तर पर ले जाते हैं। वहाँ सब राष्ट्र मिलकर विचार–विमर्श करते हैं। इसीलिए प्राचीन काल में राजनीति को लेकर, धार्मिक सम्प्रदाय को लेकर या किसी भी छोटे–बडे कारण को लेकर युद्ध होते थे वे प्रायः अभी नहीं होते हैं। अभी संचार माध्यम से, शिक्षा के प्रचार–प्रसार से, अंतर्राष्ट्रीय संबध से अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार एवं लेन–देन से मानो पृथ्वी सिकुड कर एक संक्षिप्त परिवार बन गयी है। इसलिए अभी एक राष्ट्र विपन्न होने पर, किसी भी प्रकार संकट में होने पर अन्य राष्ट्र उसकी सहायता करते हैं। जिस प्रकार अभी कुछ वर्ष पहले महाराष्ट्र प्रान्त में लातूर में जो भूकम्प हुआ था, उसके लिए राष्ट्र से सहायता मिली ही हैं, परन्तु अन्यान्य राष्ट्रों से भी सहायता मिली है। इसी प्रकार एक छोटा सा निर्बल देश कुवैत के ऊपर इराक के राष्ट्रपति सद्दाम हुसेन ने आक्रमण किया, अन्याय किया तब अन्य राष्ट्रों ने भी कुवैत की सहायता की। इसी प्रकार कभी किसी देश में महामारी फैलने पर, बाढ आने पर, भूकम्प आने पर, दुष्काल आने पर या अन्य किसी प्रकार की विपत्ति आने पर अन्य देश सहायता करते हैं। यह आधुनिक युग की सबसे बडी उपलब्धि है। जिस प्रकार दीपक के नीचे अंधेरा होता है, उसी प्रकार अभी अंतर्राष्ट्रीय स्तर पर भूमंडल (विश्व) में अनेक दुष्कर्म, भ्रष्टाचार, दादागिरी, अनैतिक कार्य चलते हैं, जिससे अभी अंतर्राष्ट्रीय स्तर पर शान्ति की स्थापना नहीं हो पा रही है। जो आर्थिक, सामाजिक, या अणुशस्त्र से सम्पन्न है, वह अन्य देश के ऊपर प्रत्यक्ष या परोक्षरूप से दबाव डालता है, दूसरों का

शोषण करता है, अपनी तानाशाही शक्ति दिखाता है। जिस प्रकार अभी का एक ज्वलन्त प्रकरण है, व्यापक परमाणु परीक्षण संधी (C. T. B.T.)। जिस देश के पास अनेक परमाणु अस्त्र हैं, जिन्होंनें अनेक बार परीक्षण कर लिया ऐसे अमेरिका, फ्राँस, आदि अन्य देशों के ऊपर दबाव डाल रहे हैं कि आप परमाणु परीक्षण नहीं कर सकते, परमाणु बम तैयार नहीं कर सकते हैं। दूसरों के ऊपर कानून लगाने वालों ने स्वयं क्यों कानून के विरुद्ध कार्य किया ? और अभी तक उन परमाणु अस्त्रों को क्यों संभाल कर रखा? यह तो चोर साहुकार को डाटने वाली नीति है। जिसने अनेक बार अन्याय किया, ऐसा व्यक्ति क्या एक न्याय युक्त व्यक्ति को तुम आगे अन्याय नहीं करना, ऐसे अधिकारपूर्ण, दादागिरी से युक्त आज्ञा देने का नैतिकबल रखता है? यह तो उसी प्रकार है कि वेश्या का सती को शील की रक्षा करने के लिए उपदेश देना, बिल्ली के द्वारा चूहों को अहिंसा का उपदेश देना, धूर्तों के द्वारा धार्मिकों को धर्म का उपदेश देना।

विशेष आश्चर्य एवं खेद का विषय यह है कि जो अणु शक्ति से युक्त देश हैं, वे अणुशक्ति रहित देशों को अणुशक्ति विक्रय करेंगे और अणुशक्ति से रहित देशों को दबाव डालेंगे कि तुम अणुशक्ति परीक्षण मत करो, अणुशस्त्र मत बनाओ। क्या यह उनकी भक्षक नीति कूट नीति, आक्रमण नीति नहीं है? यदि वे ही अणुशक्ति से युक्त होंगे तो सामरिक शक्ति से सम्पन्न होंगे और दूसरों को बेच कर आर्थिक दृष्टि से भी सम्पन्न होंगे। इस वे अन्य दुर्बल देशों के

ऊपर आधिपत्य भी स्थापन कर लेंगे। इसलिए पहले अणुशक्ति संम्पन्न देशों को प्रथमतः अणुशस्त्र ही नहीं बनाना था। द्वितीयतः अणुशस्त्र कभी भी प्रयोग नहीं करेंगे यह संधि करके, तृतीयतः अणुशस्त्र दूसरे देशों को नहीं बेचेंगे ऐसी संधि भी करनी चाहिए। पहले स्वयं सुधरकर दूसरों को सुधरने का उपदेश देना चाहिए; आप सुधरे बिना दूसरों को उपदेश नहीं दें।

कुछ राष्ट्र अन्य राष्ट्रों में आतंक, अराजकता, हिंसादि फैलाने के लिए सुनियोजित ढंग से उग्रवादियों को भेजते हैं और इधर शान्ति, मैत्री, समता का उपदेश देते रहते हैं। ऐसे राष्ट्रों की नीति उस व्यक्ति के समान है जो दूसरों को धक्का देकर कुए में डालकर कहता है 'अरे कुएँ में गिर गया' तथा घडियाली आँसु बहाता है।

उन्नत, सभ्य, आधुनिक–वैज्ञानिक युग में वास करने वाले विकृत मानसिकता के शिकार राष्ट्रनायकों की वास्तविकता का उजागर अन्तर्राष्ट्रीय सीमा पर तैनात सैनिकों से होता है। जिस प्रकार चिडिया घर की चारों दीवारों के मध्य में रहने वाले हिंस्रपशु यदि किस कारण से दीवारों को पार कर लेते हैं तो दूसरों के ऊपर आक्रमण कर लेते हैं दूसरों को घायल कर लेते हैं अथवा दूसरों को खा लेते हैं, उसी प्रकार एक राष्ट्र में रहने वाले दो पैर वाले खूँखार हिंस्र मनुष्याकार पशु स्वतंत्रता, अधिकार, मर्यादा, सत्य, अहिंसा, न्याय, समता, विश्व मैत्री, विश्व शान्ति की मर्यादा को लांघ कर, कुचल कर दूसरे राष्ट्रों के ऊपर आक्रमण कर लेते हैं, दूसरों को रौंद देते हैं, दूसरों को ध्वंस, विनाश करने में लग जाते हैं,

इसके कारण भी दूसरे राष्ट्र वाले आत्मरक्षा के लिए सैनिक, अस्त्र–शस्त्र की व्यवस्था करते हैं। यदि कोई भी राष्ट्र अन्य राष्ट्र के ऊपर आक्रमण नहीं करता है तब करोडों सैनिकों, अरबों रुपयों के अस्त्र–शस्त्र, यान–वाहन, यंत्र की आवश्यकता नहीं पडती। सैनिक विश्व के विकास के लिए रचनात्मक कार्य करते, यान–वाहन यातायात के काम आते, अस्त्र–शस्त्रादि को बनाने में जो धन बल, जनबल लगता है उसका सदुपयोग कल्याणकारी कार्य में होता। परमाणु अप्रसार संधि, व्यापक परमाणु अपरीक्षण संधि, निःशस्त्रीकरण, अस्त्रों के विक्रय आदि की ही आवश्यकता नहीं होती। परमाणु बम परीक्षण, बमविस्फोट, युद्धादि से जो प्रदूषण होता है वह भी नहीं होता परन्तु जब एक राष्ट्र सैनिक, अस्त्र–शस्त्र रखता है दूसरे राष्ट्रों के ऊपर आक्रमण करता है तब बाध्य होकर दूसरे राष्ट्र भी स्व–सुरक्षा के लिए सैनिक, अस्त्र–शस्त्र रखते हैं, आक्रमण के विरुद्ध में प्रतिआक्रमण करते हैं। इसके बिना राष्ट्र की रक्षा, स्वाधीनता की रक्षा, न्यायादि की रक्षा नहीं हो सकती है। इस दृष्टिकोण से विचार करने पर प्रायः कोई भी राष्ट्र पूर्ण अहिंसक, शांतिप्रिय, निरस्त्रीकरण करने वाला, साम्यवादी, मानवतावादी, आदर्श नहीं है। फिर किसका क्या नैतिक अधिकार है जो दूसरों को शान्ति का उपदेश दें? स्वयं भ्रष्ट आचरण में लिप्त होकर दूसरों को शान्ति का उपदेश का अर्थ है–आप लोग कायर, नंपुसक, दीन, हीन, दुर्बल, असहाय, निहत्थे बन जाओ जिससे हमें तुम्हारा शोषण करने

में, पराधीन करने में, हत्या करने में; रोंदने में सरलता होगी, सहजता होगी। ऐसे तानाशाही करने वाले राष्ट्रों का व्यवहार उस बगुले के समान है जो जलाशय में मछली को पकडने के लिए एक पैर पर खडा होकर ध्यान करता है और मछलियों को उपदेश देना कि तुम सब भी मेरे पास मेरे समान स्थिर होकर ध्यान करो। कदाचित् मान लो बगुला का उपदेश सुनकर कोई मछली बगुला के पास स्थिर होकर ध्यान करने लगेगी तो उस मछली की क्या दशा होगी ? वह बगुला उस मछली को उदरस्थ कर देगा। पहले भी इंग्लैड आदि देशों ने दुर्बल, सरल, भोले–भाले देशों के ऊपर ऐसा ही व्यवहार किया था। इसलिए कहा है–'क्षमा वीरस्य भूषणम्' तथाच 'दुर्बलस्य दूषणम्' अर्थात् बलवान्, समृद्ध बनकर क्षमादान करो, दुर्बल बनकर नहीं। यदि दुर्बल व्यक्ति कदाचित् हृदय से भी क्षमादान करता है तो दूसरे सोचेंगे कि यह इसकी लाचारी थी, विवशता थी। इससे उस क्षमादान करने वाले को ही और सतायेंगे। जैसा कि हिंसक सशस्त्र वाला, दुर्बल व्यक्ति को कहता है कि अस्त्र डाल दो। यदि वह अस्त्र डाल देगा तो उस हिंसक व्यक्ति के द्वारा उस दुर्बल व्यक्ति को मारने में और भी सरलता हो जायेगी।

जिस प्रकार डाकू परस्पर प्रेम से रहते हैं परन्तु दूसरों को लूटते हैं, दूसरों की हत्या करते हैं, उसी प्रकार कुछ कट्टर राष्ट्रवादी तथा सम्प्रदाय तो स्व–राष्ट्र में परस्पर प्रेम से रहेंगे परन्तु दूसरे राष्ट्रों को लूटेंगे, वहाँ आतंक फैलायेंगे, दूसरों के ऊपर आक्रमण करेंगे।

ऐसे व्यक्तियों की राष्ट्रीयता–धार्मिकता डाकुओं के परस्पर प्रेम के समान है, हिंस्रपशुओं के परस्पर स्नेह के समान है। गाय जिस प्रकार स्व–बछडे से प्रेम करती है परन्तु दूसरों के बछडों से द्वेष नहीं करती, उसी प्रकार राष्ट्र प्रेमियों को होना चाहिए। उनका स्व–राष्ट्र के प्रति तो निश्चल प्रेम होना चाहिए तथा दूसरे राष्ट्रों के प्रति भी वात्सल्य पूर्ण व्यवहार होना चाहिए। महात्मा गाँधी के अनुसार स्व–स्वतन्त्रता की सीमा को लाँघकर दूसरों की सीमा मे प्रवेश करना स्वतन्त्रता नहीं है परन्तु स्वच्छन्दता/ उत्श्रृंखलता तथा स्वाधीनता का हनन है। इसी प्रकार दूसरे राष्ट्रों के या सम्प्रदाय के अन्तरंग व्यक्तिगत विषयों में हस्तक्षेप दूसरों की स्वाधीनता का हनन है। ऐसे और भी जो व्यवहार दूसरे राष्ट्रों के लिए एवं सम्प्रदाय के लिए अहितकारी है, उसे भी नहीं करना चाहिए।

शरीर का प्रत्येक अवयव जब स्वस्थ रहता है तब ही व्यक्ति स्वस्थ हो सकता है। इसी प्रकार विश्व के प्रत्येक जीव, प्रकृति के प्रत्येक घटक जब स्वस्थ, संतुलित, सुखी होता है तब ही विश्व शांति हो सकती है इसलिए विश्व के प्रत्येक जीवघटक की सुरक्षा चाहिए। पर्यावरण की भी सुरक्षा चाहिए। अतएव कोई भी ऐसा कार्य नही करना चाहिए, जिस से किसी भी जीव को क्षति पहुँचे, प्रकृति का संतुलन बिगडे। जो राष्ट्र औद्योगीकरण के कारण, अर्थोपार्जन के लिए, या और भी किसी कारण से प्रदूषण फैलाते हैं, प्रकृति का अतिदोहन करते हैं, जीवों का हनन करते हैं, वे भी विश्व को क्षति पहुँचाते हैं, विश्व की शान्ति को भंग करते हैं जिस प्रकार अभी

अधिक औद्योगीकरण के कारण कीट नाशक, विषाक्त औषधियों के सेवन से, प्रकृति के दोहन से तथा और भी अनेक कारणों से पृथ्वी का तापमान दिनोंदिन बढ रहा है; ओजोन परत में छेद पड रहा है, एसिड (तेजाब) की वर्षा हो रही है, अनेक नवीन–नवीन रोग उत्पन्न हो रहे हैं, अनेक जीवों की प्रजातियाँ नष्ट हो रही हैं, प्रकृति का सन्तुलन बिगड रहा है। कोई राष्ट्र यह कहकर अपराध से मुक्त नहीं हो सकता कि ये सब कार्य हमारे राष्ट्र के अन्दर कर रहे हैं। उनका ऐसा मानना इसी प्रकार है जैसे कोई व्यक्ति नगर के मध्य में स्थित अपने घर में आग लगाकर कहेगा कि मैं सामाजिक रूप से दोषी नहीं हूँ क्योंकि मैंने अपने घर में ही आग लगाई है। क्या आग उसके घर के अन्दर ही सीमित होकर रहेगी, क्या वह आग बाहर नहीं फैलेगी, उसका दुष्परिणाम नगर में ही नहीं पडेगा? जिस प्रकार अभी कुछ वर्ष पहले भोपाल गैस काण्ड हुआ। क्या उस गैस काण्ड से केवल फैक्ट्री प्रभावित हुई? क्या भोपाल के अन्य नागरिक उससे प्रभावित नहीं हुए ? उस भोपाल काण्ड से हजारों व्यक्ति मारे गये, हजारों व्यक्ति घायल और अपंग हुए हैं और अभी भी अनेक व्यक्ति शारीरिक एवं मानसिक रूप से अस्वस्थ हैं एवं विकलांग बच्चे जन्म ले रहे हैं। इसी प्रकार एक राष्ट्र में जो प्रदूषण फैलता है, वातावरण बिगडता है, जीवों की हत्या होती हैं, उसका भी प्रभाव अन्य राष्ट्र एवं विश्व में होता है। इसी प्रकार और भी जो कार्य साक्षत् या परोक्ष रूप से हानिकारक हैं, उसे त्याग करने से ही विश्व शान्ति हो सकती है।

जैन धर्म की प्रभावना हेतु विदेश यात्रा

(डॉ. नारायण लाल कछारा एवं मेरी भावना)

आचार्य कनक नन्दी

(देश–विदेश के धर्म–दर्शन–विज्ञान–राजनीति आदि के प्राचीन एवं आधुनिक साहित्यों के अध्ययन के बाद मुझे ज्ञात हुआ कि भारतीय संस्कृति तथा विशेषतः जैन धर्म दर्शन परम सत्य, विश्व कल्याणकारी, वैज्ञानिक, गणितीय है। अतः इसका प्रचार–प्रसार–स्थापना जन–जन में विश्वविद्यालय से लेकर विश्व में हो ऐसी जो मेरी भावना एवं कार्य योजना है उसे कार्यान्वित लेख, साहित्य, शिविर, संगोष्ठी, वेबसाइट, विश्व विद्यालयों में आचार्य कनक नन्दी साहित्य कक्ष की स्थापना, जैन–अजैन शोधार्थिओं के द्वारा मेरे साहित्यों के ऊपर Ph.d करना, विदेशों में धर्म प्रचार आदि के माध्यम से हो रहा है। यह सब कार्य देश–विदेश के अनेक उदारमना जैन–अजैन श्रीमान्–धीमानों के द्वारा हो रहा है। उनमें से एक महामना हैं डॉ. नारायण लाल कच्छारा जी। आपने 1973 में सेंलफोर्ड विश्वविद्यालय से इंजीनियरिंग में Ph. d के बाद देश–विदेश के अनेक विश्व विद्यालयों में अध्यापन, निदेशक, विशेषज्ञ और सलाहकार के रूप में सेवायें प्रदान की। 1997 में सेवा निवृत के बाद मेरे पास जैन धर्म के वैज्ञानिक–दार्शनिक एवं आध्यत्मिक एवं नैतिक पक्षों का अध्ययन कर रहे हैं।

धर्म दर्शन विज्ञान शोध संस्थान के परमशिरोमणि संरक्षक रमेश चन्द के भाई तथा धर्म दर्शन सेवा संस्थान के परमशिरोमणि संरक्षक प्रद्युम्न (अमेरिका प्रवासी) के अनुरोध से तथा मेरी बहुकाल से भावित भावना के अनुसार जैना के निमंत्रण के कारण 2005 को डॉ. नारायण लाल कच्छारा जी अमेरिका जाकर 5 सप्ताह तक विभिन्न (6) शहर में आयोजित कोन्फ्रेंस में जैन

धर्म के वैज्ञानिक पक्ष को अंग्रेजी भाषा में प्रतिपादन किया। इससे प्रभावित होकर पुनः 2007 को जैना (अमेरिका) वालों ने निमंत्रण दिया। चीतरी ग्राम में मेरा आशीर्वाद एवं मार्ग दर्शन प्राप्त करने के लिए आये। चीतरी वालों ने उनका सम्मान किया और मैंनें उन्हें पूर्ववत् आशीर्वाद सहित प्रतिज्ञा बद्ध किया कि आप विदेश में भी किसी भी पंथ–मत–पूजा–पाठ आदि के बारे में कुछ भी नहीं बोलना; केवल भरतीय आध्यात्मिक संस्कृति एवं जैन धर्म के वैज्ञानिक पक्ष का ही प्रतिपादन करना, निमंत्रण एवं आवश्यकतानुसार किसी भी धर्म–पंथ के कार्यक्रम में, विश्वविद्यालय आदि में जाना, भाग लेना और वैज्ञानिक– आध्यात्मिक धर्म, विश्व प्रेम–विश्वशान्ति के बारे में ही बोलना। इसके साथ–साथ धन की याचना नहीं करना; यदि कोई स्वेच्छा से यहयोग करता है तो अवश्य स्वीकार करना। इस बार इंग्लैड में भी विभिन्न स्थान में 7 दिन तक धर्म प्रचार करके अमेरिका में प्रायः 1 महिना तक विभिन्न कॉन्फ्रेस, धार्मिक स्थल आदि में अंग्रेजी में भाषण, प्रश्नोत्तर, प्रोजेक्टर के माध्यम से प्रशिक्षण दिया। मुमुक्षु (कांजी पंथी) के मन्दिर (लंदन) में भी प्रवचन हुआ; इससे वे प्रभवित होकर पुनः आकर प्रवचन करने का निमंत्रण दिया। इसी प्रकार इंग्लैड एवं अमेरिका के अनेक शहरों के लोगों ने पुनः आकर प्रवचन करने का निमंत्रण दिया। इसके साथ–साथ मेरे साहित्यों को वेबसाइट में देने के लिए Cd. भेजने के लिए आग्रह किया और हमारी संस्था के आजीवन सदस्य भी बने। अभी मैंने 21 किताबों की Cd. अमेरिका भेजने के लिए डॉ. नारायण लाल कच्छारा जी को दे दिया। इसी प्रकार अभी पुनः अमेरिका से फोन आया कि आचार्य श्री के कार्यों के लिए व संस्था के कार्यों के लिए सहर्ष सहयोग करने के लिए तैयार हैं।)

डॉ नारायण लाल कच्छारा
(धर्म दर्शन शोध संस्थान सचिव)

जैन धर्म एक वैज्ञानिक धर्म है। विज्ञान का संबंध भौतिक जगत् से

है। विज्ञान का प्रथम सिद्धान्त है कि भौतिक जगत् में होने वाली किसी भी घटना के लिए कारण का होना अनिवार्य है। बिना कारण के कोई भी घटना नहीं होती। और यदि कोई कारण उपस्थित है तो घटना भी अवश्य घटित होगी। जैन दर्शन में इस सिद्धान्त को जीव जगत् और भौतिक जगत् दोनों ही क्षेत्र में समान रूप से मान्यता दी गई है। अर्थात् चाहे जीव जगत् हो या अजीव जगत कोई भी घटना बिना कारण के नहीं होती। जैन धर्म को वैज्ञानिक धर्म मानने का यही मुख्य कारण है।

जीव जगत में यह सिद्धान्त कर्म सिद्धान्त के रूप में प्राप्त होता है। कर्म सिद्धान्त के अनुसार जीव जैसा भी कर्म करता है उसका परिणाम उसे भुगतना पड़ता है। जीव अनादि निधन है और उसके कर्म की परम्परा अनादि काल से चली आ रही है। इस अनंत काल में जीव असंख्य पर्याय धारण कर चुका है। उसके कर्म और परिणाम में काल का अंतर भी उसी अनुपात में होना स्वाभाविक है। यह आवश्यक नहीं कि जीव को उसके किए कर्म का परिणाम उसी जीवनकाल में प्राप्त हो जाय, वस्तुतः कर्म और परिणाम का कालान्तर हजारों वर्ष भी हो सकता है। यह एक नियमित और सतत व्यवस्था है और जीव को अपने किए का परिणाम भविष्य की किसी पर्याय में कर्म सिद्धान्त के नियमों के अनुसार प्राप्त हो सकता है। यह सिद्धान्त जैन धर्म का हृदय है और इसकी सम्पूर्ण वैज्ञानिक व्याख्या जैन दर्शन के अतिरिक्त विश्व के किसी अन्य दर्शन में प्राप्त नहीं होती।

इंजीनियर और विज्ञान का छात्र होने के कारण मेरे मन में जैन धर्म के सिद्धान्तों को आधुनिक विज्ञान के परिप्रेक्ष्य में समझने की जिज्ञासा रहती है। इसके फलस्वरूप कर्म सिद्धान्त का वैज्ञानिक अध्ययन किया और ऐसे कई वैज्ञानिक साक्ष्य प्राप्त हुए जो प्रत्यक्ष और अप्रत्यक्ष रूप से इस सिद्धान्त की पुष्टि करते हैं। इस अध्ययन की परिणति "जैन कर्म सिद्धान्त, अध्यात्म और विज्ञान" नामक पुस्तक में हुई।

डॉ. जगमोहन हुमड़ जो कनाड़ा के एक विश्वविद्यालय में प्रोफेसर हैं का मत था कि ऐसे अध्ययन को जैना, अमेरिका के सम्मेलन में प्रस्तुत करने पर जैन धर्म की अच्छी प्रभावना हो सकती है और साथ ही साथ आचार्य श्री कनकनंदी जी की यह भावना की वैज्ञानिक जैन धर्म का प्रचार प्रसार विदेशों में भी होना चाहिए, की पूर्ति भी हो सकती है। इसी विचार को दृष्टिगत रखते हुए वर्ष 2005 में सान्ता क्लारा उत्तरी केलिफोर्निया में जैना के तेरहवें सम्मेलन में भाग लिया। इस सम्मेलन में तथा अमेरिका के अन्य शहरों में जहाँ–जहाँ भी मेरे व्याख्यान हुए कर्म सिद्धान्त के वैज्ञानिक अध्ययन को बहुत सराहा गया। जैन दर्शन के वैज्ञानिक अध्ययन का मेरा यह क्रम चलता रहा। परमाणु, वर्गणा तथा स्कंध, लोक की रचना, जीव विकास आदि विषयों पर शोधपरक अध्ययन से कुछ नवीन जानकारी मिली तथा हमारी पारम्परिक समझ का वैज्ञानिक आधार और स्पष्टीकरण

भी प्राप्त हुआ। यह अध्ययन एक नई पुस्तक "षट्द्रव्य की वैज्ञानिक मीमांसा" का विषय बना। जैना ने जब वर्ष 2007 के सम्मेलन की घोषणा की तो विचार हुआ कि इस सम्मेलन में उपरोक्त विषयों पर व्याख्यान दिए जा सकते हैं। अतः मैंने अपने विचारों से जैना अध्यक्ष को अवगत करा दिया। डॉ. किरीट गोशालिया जिन्होंने पिछले सम्मेलन में मेरा व्याख्यान सुना था, और जो इन सम्मेलन की प्रोग्राम समिति के सदस्य है, को जब यह समाचार मिला तो उन्होने तुरन्त अपनी उत्सुकता प्रकट की और मुझे व्याख्यान के लिए आमन्त्रण भेजने में पहल की। आमन्त्रण प्राप्त होने पर अमेरिका की दूसरी यात्रा की तैयारियाँ प्रारम्भ हो गई।

सम्मेलन न्यू जर्सी के एडिसन शहर में होना था जिसके लिए न्यूयार्क तक हवाई यात्रा करनी थी। लंदन न्यूयार्क के मार्ग पर ही स्थित है। विचार हुआ कि लंदन में कुछ दिन रूककर वहाँ भी धर्म प्रभावना का अवसर प्राप्त करना चाहिए। लंदन में एक प्रिय संबंधी राजेश जैन रहते हैं उन्हें वहाँ व्याख्यान आयोजित करने का उत्तरदायित्व दिया गया। उन्होंने उत्साहपूर्वक लंदन के विभिन्न जैन संघों से संपर्क कर एक अच्छा कार्यक्रम तैयार कर लिया। अमेरिका का वीसा मेरे पास पहले से ही था, इंग्लैण्ड का वीसा प्राप्त करने में कोई कठिनाई नहीं हुई। अमेरिका में जैना सम्मेलन के अतिरिक्त डलास और अटलांटा शहरों में भी परिचितों के माध्यम से व्याख्यान आयोजित हो गये।

25 जून गायत्री जयंति के दिन उदयपुर से प्रस्थान करने का कार्यक्रम बना। पूर्वान्ह में गायत्री शक्तिपीठ पर जाकर यज्ञ में आहूति दी और **परम पूज्य गुरुदेव पं. श्रीराम शर्मा के आशीर्वाद का आह्वान किया।** अपराह्न में आचार्य श्री महाप्रज्ञ जी और और युवाचार्य जी के दर्शन कर आशीर्वाद प्राप्त किया। रात को परिजनों एवं मित्रों ने रेल में बिठाकर मुंबई के लिए विदा किया। 27 जून प्रातः 6.40 पर कुवैत एयरवेज से हवाई यात्रा प्रारम्भ हुई। कुवैत में जहाज बदलना था, एयरपोर्ट पर लगभग पांच घंटा रूकना पड़ा। वहाँ देखा कि कुछ स्थानीय लोग चलते फिरते भी हाथ में माला रखते हैं। ऐसा लगा कि ये लोग धार्मिक प्रवृत्ति के हैं। फिर देखा कि एक व्यक्ति के एक हाथ में माला और दूसरे हाथ में सिगरेट हैं। मन में प्रश्न उठा कि हाथ में माला रखने का सही माने में क्या कोई धार्मिक प्रयोजन हो सकता है?

दोपहर एक बजे कुवैत से चलकर लगभग आठ घंटे की यात्रा के बाद लंदन स्थानीय समय के अनुसार छः बजे पहुँचे। एयरपोर्ट पर इमीग्रेशन कक्ष में बहुत भीड़ थी वहाँ से गुजरने में एक घंटे से ऊपर समय लग गया। फिर राजेश जी के घर पहुँचने में भूमिगत रेल से डेढ़ घंटे का समय और लगा। मुंबई एयरपोर्ट पर जाने और लंदन के घर पहुँचने के बीच लगभग 24 घंटे का समय व्यतीत हो गया था। थकान हो रही थी, घर पर जाकर सो गया।

28 जून को लंदन जैन समाज के प्रमुख श्रावक डॉ. नटुभाई

शाह से मीटिंग थी। शाम को आठ बजे उनके घर पहुँचे और लगभग दो घंटे बातचीत और चर्चा चली। **डॉ. नटुभाई एक चिकित्सक हैं और पहले लेस्टर शहर में रहते थे। वहाँ उन्होंने अपने प्रयास से एक पुराने चर्च के भवन मे जैन मंदिर की स्थापना करवाई। इस मंदिर में श्वेताम्बर, दिगम्बर, स्थानकवासी आदि सभी संप्रदायों को प्रतिनिधित्व दिया गया। डॉ. नटुभाई ने आग्रह किया कि समय हो तो मुझे यह मंदिर देखना चाहिए। डॉ. नटुभाई की जैन धर्म के प्रति गहन आस्था का प्रमाण यह है कि उन्होंने एक चिकित्सक होते हुए भी नीदरलैंड के एण्टवर्प विश्वविद्यालय से जैन दर्शन में पी.एच.डी. की उपाधि प्राप्त की और वहीं अब एक प्रोफेसर (अल्प कालीन) का कार्य भी करते हैं। आपने जैन दर्शन पर कई पुस्तकें लिखी हैं। आप विश्व जैन विद्वत कौंसिल के महासचिव तथा अन्य कई राष्ट्रीय और अंतर्राष्ट्रीय संस्थाओं, संगठनों और ट्रस्ट से जुड़े हैं। मैंने डॉ. नटुभाई को उदयपुर में अगस्त में होने वाले अप्रवासी सम्मेलन तथा अक्टूबर में होने वाली जैन दर्शन और विज्ञान संगोष्ठी के लिए आमंत्रित किया।**

29 जून शाम को नवयुग प्रगति मंडल में व्याख्यान था। यहाँ जैन समाज के भाई–बहन प्रति सप्ताह भक्ति का कार्यक्रम रखते हैं। मैं पहुँचा तो भजन का कार्यक्रम चल रहा था। उसके उपरांत

मुझे 25–30 मिनट का समय दिया गया। सबकी इच्छा कर्मसिद्धान्त पर व्याख्यान सुनने की थी। व्याख्यान के बाद संयोजक श्री रमण भाई और सभी श्रोताओं ने कहा कि वे ऐसा व्याख्यान और सुनना चाहेंगे और मुझे आगे भी लंदन आने का आग्रह किया।

30 जून शनिवार प्रातः 10.30 बजे दिगम्बर समाज मंदिर में व्याख्यान था। मंदिर पहुँचने पर पता चला कि यह कानजी स्वामी संप्रदाय का मंदिर है। संयोजक श्री भीमजी भाई ने मुझे एकांत में ले जाकर कहा कि मुझे केवल आचार्य कुंदकुंद का संदर्भ देकर ही बोलना होगा, किसी अन्य संप्रदाय या आचार्य का नाम लेने पर तीखी (ओर प्रतिरोधी) प्रतिक्रिया हो सकती है। मैंने उन्हें आश्वस्त किया कि मेरा व्याख्यान जैन दर्शन और विज्ञान पर आधारित है और इसमें किसी संप्रदाय या आचार्य का प्रसंग नहीं आयगा। उन्होंने मुझे कर्मसिद्धान्त पर ही बोलने का आग्रह किया और 40–45 मिनट का समय दिया। पावर पाइन्ट पर व्याख्यान सुनने के बाद सबकी यही प्रतिक्रिया थी कि मैं पुनः लंदन आऊँ, वे मुझे और सुनना चाहेंगे।

1 जुलाई प्रातः 10.30 बजे जैन विश्व भारती लंदन सायर केन्द्र पर व्याख्यान था। केन्द्र पर पहुँच कर समणी प्रराज्ञ प्रज्ञा जी के दर्शन किए, उन्हें उदयपुर के समाचारों से

अवगत कराया तथा मेरी दो पुस्तकों की प्रतियाँ भी भेंट की। यहाँ व्याख्यान के लिए एक घण्टा और प्रश्नोत्तर के लिए 15 मिनट का समय उपलब्ध था। विषय कर्मसिद्धान्त ही रखा गया था और कार्यक्रम की समुचित पूर्व सूचना होने से उपस्थिति भी अच्छी थी। **जैन दर्शन पर विज्ञान आधारित पावर पाइन्ट पर व्याख्यान सुनने का लोगों का सम्भवतया यह पहला अवसर था। श्रोता बहुत प्रभावित थे, सभी का कहना था कि ऐसा सारपूर्ण वैज्ञानिक व्याख्यान उन्होंने पहली बार सुना। व्याख्यान में डॉ. नटुभाई शाह भी उपस्थित थे, उन्होंने मेरे व्याख्यान की स्लाइडस मांगी जिसे मैंने स्वीकार कर लिया। समणी जी ने कहा कि वे मेरे व्याख्यान उनके केन्द्र पर भविष्य में भी रखना चाहेगी।**

एक श्रोता का प्रश्न था कि ध्यान से निर्जरा कैसे होती है ? उत्तर में मैंने कहा कि कर्म दो प्रकार के होते हैं – भाव कर्म और द्रव्य कर्म। भाव कर्म आत्मा के विकार है और द्रव्य कर्म उन विकारों के प्रतिनिधि कर्म। भावकर्म और द्रव्य कर्म में बराबरी का संतुलन होता है और दोनों का अस्तित्व एक साथ होता है अर्थात् भावकर्म होने से द्रव्य कर्म और द्रव्य कर्म होने से भाव कर्म होते हैं। किसी एक का क्षय होने से दूसरे का अस्तित्व भी समाप्त हो जाता हैं। ध्यान में आत्मा से सीधा संपर्क होता है और आत्मा की शक्ति से ही उसके विकारों का क्षय होता हैं। फलस्वरूप कार्मण शरीर में

संबंधित द्रव्य कर्म भी निर्जरित हो जाते हैं क्योंकि एक का अस्तित्व नहीं होने से दूसरे का अस्तित्व भी स्वतः समाप्त हो जाता है।

2 जुलाई को लेस्टर जाने का कार्यक्रम बना। वहाँ पहुँचने पर मंदिर ट्रस्ट के अध्यक्ष डॉ. रमेश भाई मेहता बस स्टेण्ड पर अगवानी के लिए उपस्थित थे। डॉ. रमेशभाई भी चिकित्सक हैं और सेवानिवृति के बाद मंदिर ट्रस्ट के कार्य का उत्तरदायित्व संभाले हुए हैं। वे मुझे मंदिर ले गये। **पुराने चर्च के भवन में बना यह मंदिर जैन एकता का अद्‌भुत उदाहरण है। मुख्य प्रांगण में दोनों श्वेताम्बर और दिगम्बर प्रतिमाएं अलग–अलग कक्ष में स्थापित हैं। स्थापत्य कला और शिल्पकला का बहुत सुन्दर कार्य देखने को मिलता है।** मंदिर के हाल में जैसलमेर के पत्थरों से खंभे बनाए गए हैं जिन्हें रंग देने पर वे लकड़ी से निर्मित दिखाई देते हैं। एक कक्ष में स्थानकवासी सम्प्रदाय के लिए उपाश्रय की व्यवस्था है जहाँ एक पाट भी रखा गया हैं। एक और कक्ष में श्रीमत् रायचंद्र के अनुयायियों के लिए स्वाध्याय और साधना की व्यवस्था है। यह सब निर्माण प्रथम तल पर है। भूतल पर सभागार भोजनशाला, पुस्तकालय, पाठशाला आदि की व्यवस्था है। एक परिव्राजक और एक पुजारी मंदिर में नियमित रूप से कार्य करते हैं। **छुट्‌टी के दिन आने वाले दर्शनार्थियों के लिए पूर्व सूचना होने पर भोजन की व्यवस्था भी की जाती है।** मुझे भी उसी भोजनशाला में भोजन

कराया गया। पुस्तकालय कक्ष में डॉ. रमेश भाई से लगभग एक घंटे तक चर्चा हुई।

3 जुलाई प्रातः मुझे श्री दिनेश भाईशाह लंदन से कुछ दूर पोटस बार में स्थित जैन मंदिर ले गए। ओसवाल समाज द्वारा निर्मित यह भव्य मंदिर देखते ही बनता है। रणकपुर मंदिर की तर्ज पर बना यह मंदिर बहुत ही साफ सुथरा और मनमोहक है। मंदिर के चारों तरफ सुन्दर बगीचे और देवालय की श्रंखला है जो बहुत ही रमणीय दृश्य उपस्थित करती है। मंदिर परिसर के पास वाले भवन को एक सामुदायिक केन्द्र के रूप में विकसित किया गया है। यहाँ शादी विवाह व अन्य सामाजिक कार्यों के लिए हाल, भोजनशाला, रिहायशी कमरों आदि की सुन्दर व्यवस्था है। दिनेश भाई ने बताया कि **यहाँ सप्ताहांत के लिए लगभग एक–डेढ़ वर्ष की अग्रिम बुकिंग चल रही है। सप्ताह के और दिनों में भी भवन की मांग रहती है।** इन गतिविधियों से होने वाली आय से मंदिर परिसर के रख रखाव पर होने वाले व्यय के बाद भी बचत हो जाती है जिससे मंदिर में आगे विकास कार्य किया जा रहा है। श्री दिनेश भाई का परिवार बहुत धार्मिक प्रवृत्ति का है और उन्होंने मुझे बहुत प्रेम और सत्कार के साथ भोजन कराया।

भोजन के बाद धार्मिक चर्चा भी हुई। एक प्रश्न पूछा गया कि क्या जीव की आयु निश्चित होती है? मैंने कहा कि आयु नहीं आयुष्य कर्म निश्चित होते हैं। इन कर्मों का कम अवधि में भी भोगा

जा सकता है और अधिक अवधि में भी। शारीरिक और मानसिक रोग, वातावरण से होने वाली बीमारियाँ, प्राकृतिक घटनाएँ या दुर्घटनाएं आदि जीव की आयुष्य अवधि को प्रभावित करते हैं। सावधानीपूर्वक और विवेक पूर्वक जीवन निर्वाह करने से आयुष्य अवधि को बढ़ाया जा सकता है। अकाल मृत्यु होने पर शेष आयुष्य कर्म क्षरित हो जाते हैं। यदि ऐसे कोई बाह्य या आंतरिक कारण नहीं हैं जो आयुष्य कर्म को प्रभावित करें तो आयुष्य निश्चित हो जाती है जैसे भगवान महावीर के साथ हुआ था। उनकी आयुष्य में एक क्षण की भी वृद्धि सम्भव नहीं हुई।

3 जुलाई को ही अपरान्ह 4 बजे लंदन विश्वविद्यालय के स्कूल ऑफ अफ्रीकन स्टडीज में धार्मिक अध्ययन विभाग में जैन अध्ययन केन्द्र के प्रभारी डॉ. पीटर फ्युगल से मीटिंग तय हुई थी। कॉलेज का भवन ढूंढने में कुछ अधिक समय लग गया अतः 4.10 पर मैं डॉ. पीटर के कक्ष तक पहुँचा। पाया कि वहाँ ताला लगा हुआ है । शायद वे मीटिंग के बारे में भूल गये होंगे। **मुझे ज्ञात हुआ कि यह केन्द्र स्नातक एवं स्नातकोत्तर स्तर पर जैन विद्या के कुछ पाठ्यक्रम पढ़ाता है, जैसे जैनधर्म का परिचय, जैन शिल्पकला, जैन समाज, जैन इतिहास, सिद्धान्त आदि। केन्द्र द्वारा अंतर्राष्ट्रीय सम्मेलन, संगोष्ठी तथा व्याख्यान भी आयोजित किए जाते हैं। समणी प्रतिभा प्रज्ञा जी ने इसी कॉलेज से**

स्नातकोत्तर डिग्री प्राप्त की थी।

4 जुलाई को मेनचेस्टर जाने का कार्यक्रम बना। मेनचेस्टर में जैन समाज की अच्छी संख्या है तथा एक मंदिर भी है। वहाँ के एक सक्रिय कार्यकर्त्ता ज्योत्सना बेन ने मुझे बस स्टेण्ड से मंदिर ले जाने, वहाँ मेरे लिए भोजन और मंदिर से मुझे सेलफोर्ड विश्वविद्यालय, जहाँ से 34 वर्ष पूर्व मैंने पीएच.डी. की थी, ले जाने की व्यवस्था कर दी। लंदन में प्रातः 8.30 बजे विक्टोरिया बस स्टेण्ड से मेनचेस्टर के लिए बस पकड़नी थी और मेनचेस्टर से वापसी बस शाम को 6.00 बजे थी।

5 जुलाई को दोपहर 3.30 बजे लंदन से न्यूयार्क के लिए उड़ान थी। जहाज कुछ विलम्ब से चला अतः न्यूयार्क शाम को 6.00 बजे बजाय 7.00 बजे पहुँचा। कैनेडी एयरपोर्ट पर जैना के कार्यकर्त्ता को मुझे रिसीव करना था परन्तु मुझे वहाँ कोई व्यक्ति दिखाई नहीं दिया। कुछ चिंता हुई। फोन करना चाहा परंतु खुले पैसे नहीं थे। एक व्यक्ति ने पूछा कि क्या परेशानी है। मैंने बताया तो उसने अपने सेल फोन से काल किया। मुझे पता चला कि मुझे रिसीव करने गाड़ी गई है और मुझे हाल के अन्दर ही इन्तजार करना चाहिए। थोड़ी देर में एक व्यक्ति जैना का प्लेकार्ड लेकर आया। वह वास्तव में पार्किंग में मेरी राह देख रहा था। लगभग एक घंटे में न्यूजर्सी होटल में पहुँचे। थका हुआ था, सो गया।

जैना, अमेरिका और कनाड़ा में प्रवास कर रहे डेढ़ लाख से अधिक जैन लोगों द्वारा संचालित 67 जैन संघों का प्रतिनिधि संघ है। इस संघ की स्थापना गुरुदेव चित्रभानु जी तथा मुनि श्री सुशील कुमार जी (स्वर्गीय) की प्रेरणा से 1981 में हुई। 300 से भी अधिक सक्रिय कार्यकर्त्ता की सहायता से जैना संघ जैन धर्म का प्रचार–प्रसार, सामाजिक सेवा, सांस्कृतिक आदान–प्रदान, अहिंसा और शाकाहार, सर्वधर्म समभाव आदि क्षेत्रों में सराहनीय कार्य कर रहा है और इसके लिए संघ को यू.एस.ए.आई.डी. से सहायता पाने की मान्यता भी प्राप्त है। मानवीय सेवा के लिए जैना को कई अमेरिकन और भारतीय पुरस्कार भी प्राप्त हुए हैं।

हर दो वर्ष में जैना अपने सदस्यों के लिए विशाल स्तर पर एक सम्मेलन आयोजित करता है। इस सम्मेलन में अमेरिका और कनाड़ा के अतिरिक्त विश्व के अन्य कई देशों से जैन श्रावक श्राविकाएं भाग लेते हैं। एडिसन, न्यूजर्सी में होने वाले इस 14वे सम्मेलन की थीम "संवाद से शांति" रखी गई। इसमें विश्व स्तर के लगभग 100 विद्वानों को आमंत्रित किया गया और लगभग 200 सत्र आयोजित किए गये। इन सत्रों में "जैन धर्म की प्रभावना" जैन आहार, भविष्य का परिदृश्य, जैन दर्शन और विज्ञान

आदि विषयों पर व्याख्यान रखे गए वहीं दूसरी ओर "अपूर्व अवसर", "समोसरण", "भगवान् ऋषभदेव", "अहम् ना उदकार", "संजीवनी", "मीरा" "अष्ट प्रतिहार्य" आदि मनोरंजन परंतु शिक्षाप्रद कार्यक्रम रखे गए। युवकों और बालकों के लिए विशेष आयोजन किए गए। विभिन्न सत्र तीन भवनों मे बांटे गए। मुख्य आयोजन न्यूजर्सी कनवेन्शन एवं एक्सपो केन्द्र पर रखा गया और दूसरे आयोजन होटल होलिडे इन (जहाँ मैं रूका था) और होटल शेराटन में रखे गए। इन तीन स्थानों के बीच आवागमन के लिए हर समय बस की अच्छी सुविधा थी। एक्सपो केन्द्र की साज सज्जा बहुत आकर्षक थी। वहाँ दीवारों पर रणकपुर मंदिर के बड़े–बड़े भव्य पोस्टर लगाए गए थे और मंच पर तथा हाल के बीच–बीच में राणकपुर मंदिर में प्रतिष्ठित विभिन्न देवांगनाओं के सुन्दर बैनर टांगे गए थे। ये सब मिलकर मुख्य हाल को एक आकर्षक जैन स्थल का परिदृश्य प्रदान कर रहे थे। राणकपुर के ये चित्र प्रख्यात फोटोग्राफर थॉमस डिक्स की पुस्तक पर आधारित थे। प्रतिदिन प्रातः अल्पाहार से पूर्व प्रतिक्रमण (श्वेताम्बर, दिगम्बर और स्थानकवासी परम्परा), योग, ध्यान आदि का कार्यक्रम आयोजित किया गया। कन्वेन्शन का प्रारम्भ 5 जुलाई दोपहर 4.00 बजे हो गया जिससे गुरुदेव चित्रभानु जी आचार्य चंदना जी व अन्य संतों द्वारा आशीर्वाद प्रदान किया गया। विधिवत उद्घाटन 6 जुलाई प्रातः 9.00 बजे हुआ। इस

सत्र में श्री श्री रविशंकर जी, गुरुदेव चित्रभानु जी, आचार्य चंदना जी, अमरेन्द्र मुनिजी, मूडवद्री के भट्टारक चारूकीर्ति जी, जिनचन्द्र सूरी जी महाराज, माणक मुनिजी, माताजी शुभमति, लोकेश मुनिजी, समण श्रुतप्रज्ञाजी, समणी मंगल प्रज्ञा जी, समणी अश्विनी प्रज्ञाजी, साध्वी शिल्पा जी, साध्वी शुभम जी आदि संतों के आशीर्वाद हुए तथा न्यूजर्सी के काग्रेंस मेन फ्रेंक पेलोन का उद्बोधन हुआ। **भारत के राष्ट्रपति महामहिम श्री ए.पी.जे. अब्दुल कलाम, व प्रधानमंत्री श्री मनमोहनसिंह, अमेरिका के राष्ट्रपति जार्ज बुश तथा न्यूजर्सी के गवर्नर और स्पीकर के शुभकामना संदेश पढ़े गये।**

भोजनोपरांत आधुनिक विश्व में जैनधर्म की प्रासंगिकता परश्री रविशंकर जी का उद्बोधन, डॉ. लक्ष्मीलाल सिंघवी द्वारा 24 तीर्थंकरों की ऐतिहासिकता, डॉ. कुमारपाल देसाई द्वारा अष्टापद का महत्व और योगाचार्य स्वामी श्री रामदेव जी द्वारा आरोग्य और प्राणायाम पर उद्बोधन, तथा श्रीमत् रायचंद्र आश्रम मुंबई के डॉ. राकेशभाई जवेरी का धर्म और सम्प्रदाय पर उद्बोधन उल्लेखनीय रहे।

7 जुलाई को तीनों स्थानों पर भिन्न–भिन्न सत्र सम्पादित हुए। दोपहर में माताजी शुभमति जी का कैशलोचन भी था। वर्गणा विज्ञान और पदार्थ की रचना पर मेरा व्याख्यान भी दोपहर में रखा गया। **प्रातः श्री निर्मल दोसी के संयोजकत्व में जैन एकता**

पर एक सत्र आयोजित किया जिसमें संतों और विद्वानों द्वारा विचार व्यक्त किए। मैंने भी भारत में आचार्य श्री महाप्रज्ञ जी, आचार्य श्री कनकनंदी जी, आचार्य श्री शिव मुनिजी आदि की प्रेरणा से किए जा रहे एकता प्रयासों से सभा को अवगत कराया। श्री निर्मल दोसी आचार्य श्री कनकनंदी जी के भक्त हैं मैंने उन्हें और उनकी धर्म पत्नी को आचार्य श्री द्वारा भेजी गई मालाएं भेंट की तथा साहित्य भी प्रदान किया।

8 जुलाई प्रातः केलोग स्कूल ऑफ मेनेजमेन्ट के डीन डॉ. दीपक जैन का एथिक्स, मूल्य और नेतृत्वः जैन दृष्टिकोण पर उद्बोधन उल्लेखनीय रहा। 12 बजे सम्मेलन का समापन सत्र हुआ। अगला सम्मेलन वर्ष 2009 में लॉस एन्जिलिस में होगा। सम्मेलन में भोजन व्यवस्था सराहनीय रही और यह बापू आशाराम जी के अनुयायियों (अजैन) द्वारा की गई। लगभग 3.30 बजे मैंने होटल छोड़ दिया और अपने एक संबंधी के साथ कनेक्टीकट चला गया।

10 जुलाई को सिद्धाचलय तीर्थ की यात्रा की। 120 एकड़ भूमि पर बना यह तीर्थ न्यू जर्सी के ब्लेयर्सटाऊन नामक स्थान पर रमणीय वातावरण में आचार्य श्री सुशीलकुमार जी द्वारा सन् 1983 में स्थापित किया गया। आचार्य श्री सुशील कुमार जी सन् 1975 में अमेरिका गये और उन्होंने यहाँ जैन सिद्धान्तो का प्रचार–प्रसार

प्रारम्भ किया। बहुत से स्थानीय लोग उनके अनुयायी बने। मुख्य मंदिर में भगवान आदिनाथ, चंद्रप्रभु, शांतिनाथ, पार्श्वनाथ और महावीर स्वामी की प्रतिमाएं विराजमान् हैं। इसके अतिरिक्त भगवान् बाहुबली, मणीधारी दादागुरु जिनचंद्र जी, चक्रेश्वरी माता एवं पद्मावती देवी की प्रतिमाएं भी प्रतिष्ठित हैं। एक दूसरे छोटे मंदिर में भगवान् पार्श्वनाथ, सरस्वती देवी, लक्ष्मीदेवी, अम्बिकादेवी, घंटाकरण महावीर पार्श्व यक्ष, पद्मावती देवी और नाकोड़ा भेरवजी की प्रतिमाएं हैं। वर्ष 2004 में भोजनशाला का निर्माण हुआ जिसके भोजन कक्ष में 300 से अधिक व्यक्तियों के भोजन करने की सुविधा है तथा भूतल पर 8000 वर्ग फीट का एक सांस्कृतिक हाल है। परिसर में एक छोटा और सादा मुनि निवास है जिसमें एक रसोई घर भी है। इसके अतिरिक्त दर्शनार्थियों के लिए धर्मशाला के रूप में कुछ कुटियाँ बनी हुई हैं जिसमें 200/250 यात्री निवास कर सकते हैं। **आचार्य सुशील कुमार जी ने अमेरिका में एकता का परिचय देते हुए कुछ हिन्दु–जैन मंदिर भी बनवाए। आचार्य श्री ने सर्वधर्म समभाव पर बहुत अच्छा कार्य किया। समण–सुत्तम ग्रंथ की रचना में भी आपकी भूमिका थी। सिद्धाचलम तीर्थ अंतर्राष्ट्रीय रेवेन्यु कोड और संयुक्त राष्ट्र संघ से मान्यता प्राप्त है तथा कोलम्बिया विश्वविद्यालय, न्यूयार्क और केलीफोर्निया विश्वविद्यालय को जैन विद्या के अध्ययन में सहायता करता है।** यहाँ, श्रावक श्राविकाओं, युवकों

एक बालकों के लिए शिविर आयोजित किए जाते हैं। परिसर में एक पुस्तकालय भी है। आचार्य सुशील मुनि जी ने डिफेन्स कोलोनी, नई दिल्ली में भी अहिंसा पर्यावरण साधना मंदिर के नाम से एक आश्रम स्थापित किया है।

यह पहले ही बताया गया है कि जैना संगठन की स्थापना में और अमेरिका में विभिन्न जैन संप्रदायों के बीच एकता स्थापित करने में आचार्य श्री सुशील कुमार जी का महत्वपूर्ण योगदान रहा है। सन् 1994 में आपकी समाधि हो गई। श्री अमरेन्द्र मुनि जी अभी आश्रम में विराजमान थे। उनके दर्शन किए, चर्चा की तथा कुछ साहित्य भी भेंट किया।

14 जुलाई प्रातः 6.00 बजे न्यूयार्क से डलास के लिए उड़ान थी। घर से रात्रि तीन बजे ही निकलना पड़ा। रात्रि में ट्राफिक कम होने से एक घंटे में एयरपोर्ट पहुँच गए। डलास एयरपोर्ट पर डॉ. गणेश हड़पावत ने रिसिव किया। उनके घर भोजन के उपरांत जैन मंदिर गये वहाँ दोपहर 2.30 बजे मेरा व्याख्यान था। **जीव की उत्पत्ति और विकास पर जैन दर्शन और आधुनिक विज्ञान का तुलनात्मक विवेचन सबको बहुत पसन्द आया।** मैंने श्रोताओं को उदयपुर में अगस्त में होने वाले एन.आर.आई. कन्वेशन और अक्टूबर में जैन दर्शन और विज्ञान पर होने वाली राष्ट्रीय संगोष्ठी की जानकारी भी दी। दूसरे दिन रविवार को जैन लोक और ब्रह्माण्ड पर व्याख्यान हुआ। जैन खगोल और भूगोल एक ऐसा

विषय है जिसकी परम्परागत व्याख्या वैज्ञानिक खोज से बिल्कुल नहीं मिलती। परन्तु जो विचार मैंने व्यक्त किए उससे जैन दर्शन और वैज्ञानिक दृष्टिकोण में बहुत निकटता सिद्ध होती है। जैन दर्शन में दिए गये लोक के आकार को वैज्ञानिक आधार भी मिलता है। मेरी व्याख्या श्रोताओं को तर्कपूर्ण लगी। अगले दिन सोमवार को वर्गणा विज्ञान और पदार्थ की संरचना पर व्याख्यान हुआ। परमाणु और वर्गणाओं की व्याख्या से श्रोता बहुत प्रभावित हुए। **सबको इस बात का अहसास हुआ कि जैन दर्शन में पुद्गल का विवरण कितना गूढ़ है और वैज्ञानिक दृष्टिकोण से भी कितना आगे है।**

मेरे व्याख्यानों का एक प्रभाव और हुआ। कुछ लोगों का मत था जैनदर्शन के वैज्ञानिक विवेचन का व्यापक प्रचार–प्रसार होना चाहिए। उन्होंने इस कार्य के लिए अपनी सेवाएं देने की इच्छा भी प्रकट की। मैंने सुझाव दिया कि अमेरिका में जैन केन्द्रों के अतिरिक्त विश्वविद्यालयों में स्थित जैन संस्थानों में भी प्रचार की आवश्यकता है। उन्होंने इस दिशा में आगे कार्य करने का आश्वासन दिया। उन्हें जब मालूम हुआ षट्द्रव्य की वैज्ञानिक विवेचना विषय पर मेरी पुस्तक हिन्दी में प्रकाशित हो रही है तो सबका कहना था कि इस पुस्तक का शीघ्रातिशीघ्र अंग्रेजी में अनुवाद होना चाहिए। **मेरे व्याख्यान अंग्रेजी में होने के कारण**

युवा लोगों ने भी भाग लिया। अमेरिका जैसे देशों में युवाओं से संवाद स्थापित करने के लिए अंग्रेजी भाषा का प्रयोग आवश्यक है।

डलास में श्री प्रद्युमन जवेरी जी के यहाँ भी रहने का अवसर प्राप्त हुआ। आप और श्रीमती लक्ष्मी जवेरी दोनों ही आचार्य श्री कनकनंदी जी के परम भक्त हैं तथा आचार्य श्री के ग्रंथ प्रकाशन में निरन्तर सहयोग प्रदान करते रहते हैं। मैंने उन्हें आचार्य श्री का साहित्य और आशीर्वाद स्वरूप उनके द्वारा भेजी गई माला भेंट की। दोनों पति पत्नि बहुत ही धार्मिक प्रवृत्ति के हैं और अमेरिका में रहते हुए भी श्रावक धर्म का यथोचित पालन करते हैं। उनके आतिथ्य से मेरा मन ऋणी हो गया।

शनिवार 21 जुलाई को डलास से अटलांटा पहुँचा। एयरपोर्ट पर श्री दीपक भाई शाह ने रिसीव किया और मुझे मेरे मेजबान श्री अतुल गुप्ता के यहाँ पहुंचाया। श्री गुप्ता जयपुर से हैं। 22 जुलाई प्रातः 11 बजे जैन सेन्टर में व्याख्यान आयोजित था। सेन्टर के मन्दिर में भगवान पार्श्वनाथ और भगवान महावीर की श्वेताम्बर प्रतिमाएं विराजमान हैं। हाल में अच्छी उपस्थिति थी। **मैंने कर्मसिद्धान्त की वैज्ञानिक व्याख्या पद्धति से व्याख्यान सुनने का श्रोताओं का पहला अवसर था और सबको बहुत पसन्द आया। कई लोगों ने मेरे स्लाइड की कापी मांगी सो मैने**

सहर्ष स्वीकार कर लिया। 23 जुलाई रात को जैन कॉस्मोलॉजी पर व्याख्यान दिया तथा जैन दर्शन में लोक और वैज्ञानिक दृष्टि में ब्रह्माण्ड की तुलना की। इस तुलना से जैन लोक का जो स्वरूप उभर कर आया वह सभी को विश्वसनीय लगा। 24 जुलाई रात को जीव विकास की जैन दर्शन और वैज्ञानिक अवधारणा पर व्याख्यान दिया। सभी लोगों ने कहा कि जैन दर्शन की वैज्ञानिक विवेचना पर व्याख्यान होते रहने चाहिए और उन्होंने मुझे पुनः अटलांटा आने का आग्रह किया।

अटलांटा में जैन वर्ल्ड डाट्काल के प्रणेता श्री विनोद दरियापुरका से भी विचार विमर्श हुआ। विनोद जी पिछले 10–12 वर्षों से इस प्रोजेक्ट पर कार्य कर रहे हैं। जैन धर्म की प्रभावना में उनकी महत्वपूर्ण भूमिका के लिए इस वर्ष जैना द्वारा उन्हें प्रेसीडेन्ट पुरस्कार देकर सम्मानित किया गया। उन्होंने विभिन्न देशों के कार्यकर्त्ताओं की सहायता से जिनवाणी को 24 भाषाओं में अनुवाद करने का सराहनीय कार्य प्रारम्भ किया है। जैन धर्म के प्रमुख आगमों और कई महत्वपूर्ण ग्रंथों को भी वेब साइट पर उपलब्ध कराया है। फिलहाल षट्खण्डागम् पर कार्य चल रहा है और बहुत जल्द यह पुरा ग्रंथ आनलाइन उपलब्ध हो जायगा। विनोद भाई का कहना है कि जैन धर्म की वैज्ञानिक व्याख्या वेबसाइट पर

उपलब्ध होनी चाहिए इस प्रयोजन हेतु उन्होंने आचार्य श्री कनकनंदी जी के साहित्य की सॉफ्ट कापी की मांग की। मेरी पुस्तक जैन डॉक्टरीन ऑफ कर्मा उनकी वेबसाइट पर पहले से ही उपलब्ध है।

25 जुलाई प्रातः अटलांटा से न्यूयार्क पहुँचा। रात 9 बजे भारत वापसी की फ्लाइट पकड़ी। अगले दिन सुबह 9 बजे (स्थानीय समय दोपहर 4 बजे) कुवैत पहुँचा। वहाँ से रात्रि 10.45 बजे मुंबई के लिए उड़ान थी। एन वक्त पर घोषणा की गई कि तकनीकी कारण से यह उड़ान निरस्त कर दी गई। और अब अगले दिन रात्रि को जायगी। मेरी समस्या हो गई क्योंकि 27 जुलाई को मेरा मुंबई से उदयपुर रेल आरक्षण था। देरी होने पर मुझे नया आरक्षण मिलने की कोई संभावना नहीं थी। कुवैत से देहली भी उड़ान है जो रात्रि 10.30 थी परन्तु उस दिन उसमें भी देर हो गई थी। मैंने कहा कि मुझे मुंबई के बजाय देहली यात्रा की सुविधा दी जाय। उड़ान में सीट खाली थी और मुझे स्थान मिल गया। इस प्रकार में मुंबई के बजाय देहली पहुँच गया। देहली से रेल आरक्षण आसानी से उपलब्ध हो गया और मैं 28 जुलाई सुबह उदयपुर पहुँच गया। इस प्रकार कुछ रोमांच के साथ मेरी यात्रा सम्पन्न हुई। जेट लेग के कारण 2–3 दिन शरीर में थकान रही। 30 जुलाइ को गुरु पूर्णिमा थी। प्रातः गायत्री शक्तिपीठ पर यज्ञ में भाग लिया तथा मन ही मन यात्रा की उपलब्धि के लिए गुरुदेव का आभार व्यक्त किया। रात्रि को आचार्य श्री महाप्रज्ञ जी के दर्शन किए और उन्हें यात्रा के

समाचार से अवगत कराया।

यात्रा सम्पन्न होने पर यात्रा के प्रयोजन और उसकी सफलता पर एक दृष्टि डालना आवश्यक है। यात्रा की सफलता इसी बात से आंकी जा सकती है कि इससे जैन धर्म की कितनी प्रभावना हुई। मैं समझता हूँ कि मेरी यात्रा से श्रोताओं को जैन दर्शन के कुछ पक्षों पर वैज्ञानिक विवेचना सुनने का अवसर प्राप्त हुआ और उनमें जैन दर्शन पर वैज्ञानिक दृष्टि से चिंतन करने की जिज्ञासा भी उत्पन्न हुई। जैन दर्शन के सशक्त वैज्ञानिक पक्ष को श्रोताओं ने स्वीकार किया और इस दिशा में आगे अनुसंधान करने की आवश्यकता को अनुभव किया। परन्तु यह सब प्रयास पारम्परिक जैन समाज तक ही सीमित रहा। जैन दर्शन के विश्व में प्रचार–प्रसार के लिए अजैन समुदाय में इसका संचार और प्रचार अपेक्षित है। हमें यह देखना है किस प्रकार जैन दर्शन अजैनों के विचारों और आचरण को प्रभावित करता है। जैन दर्शन का विश्व स्वरूप और वैज्ञानिक पक्ष इतना सशक्त है कि कोई भी विचारवान व्यक्ति प्रभावित हुए बिना नहीं रहता। इसका एक उदाहरण ऐदान रेन्किन है। लन्दन स्कूल ऑफ इकोनोमिक्स के शिक्षक ऐदान रेन्किन, इन्स्टीट्यूट ऑफ जैनोलॉजी के डॉ. हर्षद एन. संघराजका तथा जैन स्पीरिट पत्रिका के श्री अनंत शाह और श्री अतुल शाह के सम्पर्क में आए और उन्होंने जैन दर्शन का अध्ययन किया। वे जैन स्पीरिट पत्रिका के अतिथि सम्पादक भी रहे। उन्होंने The Jain Path, Ancient Wisdom for the west शीर्षक से एक पुस्तक लिखी है।

आचार्यश्री कनकनन्दी द्वारा द्वय मुनि दीक्षा के अवसर पर आ. कनकनन्दी के ग्रन्थों का विमोचन करते हुए राष्ट्र सन्त गणेश मुनि शास्त्री आदि (उदयपुर 2005)

डलास कन्वेंशन (अमेरिका) में जैन धर्म के वैज्ञानिक सत्य–तथ्य को वैज्ञानिक उपकरणों के द्वारा प्रस्तुत करते डॉ. एन. एल. कच्छारा

Seema Printers,Udr. # 0294-3295406